(१४) स्वामीजी और अद्भुत वचन-सिद्धि के प्रसंग; (१५) स्वाध्याय रूपमें स्वामीजी; (१६) सत्य के पुजारी और निर्भीक नेता रूप में स्वामीजी।

इस जीवन चरित्र के तैयार करने में हमें श्री पन्नालालजी भसाली द्वारा संग्रहीत "स्वामीजी के दृष्टान्तों" से बड़ा सहारा मिला। इसके लिए हम उनके प्रति कृतज्ञ हैं।

यदि यह जीवन-चरित्र पाठकों के जीवन निर्माण और स्वामीजी के जीवन-सम्बन्ध में जो गलत फहमियां फैलायी जा रही हैं, उन्हें दूर करने में जरा भी सहायक हुआ, तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूंगा। देखें तो यह जीवन चरित्र स्वान्तः सुखाय ही लिखा गया है और इसे लिखते समय अनिर्वचनीय आनन्द की प्राप्ति हुई है—आत्म-संतोष की बात तो कह ही नहीं सकता, क्योंकि स्वामीजी की जीवनी, जैसा कि मैं ऊपर लिख आया हूं, वर्षों के सतत और एकान्त स्वाध्याय की आवश्यकता रखती है, फिर भी यह जीवन-चरित्र भावी लेखकों के लिए कुछ दिशा सूचक होगा ऐसी आशा है।

[illegible]
१, नूरमल लोहिया लेन
कलकत्ता

श्रीचन्द रामपुरिया

खण्ड : २

जीवन-विश्लेषण

१—स्वामीजी के जीवन की पृष्ठभूमिका : ८३

[आरोप और उसका हेतु—संस्थापक नहीं उद्धारक—अन्तर-भावना के स्फुट चित्र—यह आकर्षण क्यों ?—अन्तिम समय के दो स्फुट चित्र—जीवन का ध्रुवपद—धर्म-अधर्म का नीर-क्षीर विवेक—जिन-आज्ञा की महानता]

२—एक अमाप्य महापुरुष : १०६

३—एक महान् आदर्शवादी संत : १०८

४—एक महान् क्रांतिकारी युग-पुरुष : १२३

[वह जमाना—पुनर्निर्माण की रूपरेखा—शिथिलाचार की आलोचना—श्रावकों के प्रति भी]

५—वैराग्य मूर्ति : १४४

[एक संगम—वैराग्य भाव की कथाएँ]

६—क्रांतिकारी तत्त्वज्ञानी : १५८

[नव पदार्थ का वैज्ञानिक विश्लेषण—षड्द्रव्य—तत्त्वज्ञान के निर्झर—स्वर्ग-नर्क कौन ले जाता है ?—ईश्वर का परत्व—विधवा कैसे ?—सुख-दुःख का कारण—लाभ-अलाभ का कारण—पुराने काल में देवालय क्यों ?—कूर्मापुत्र के केवली [illegible] श्रावक के व्रत एक या दो ?—पुण्य बंध कैसे होता [illegible] एक ही [illegible] साधु कौन ?—[illegible] पाप—[illegible]]

[illegible]

[illegible]

—[illegible]

अनुक्रमणिका

खण्ड : १

जीवन-कथा पृष्ठ

१—गृह-जीवन और दीक्षा : ३

[जन्म—यौवन—विवाह—वैराग्य और दीक्षा]

२—दीक्षा के बाद ८ वर्ष : ११

[विचक्षण शिष्य—राजनगर का चौमासा—एक आत्मवञ्चना—अनुताप और प्रतिज्ञा—मौन स्वाध्याय—वापिस आचार्य के पास]

३—प्रभु के पथ पर : २०

[सम्बन्ध विच्छेद के बाद—श्रेयस् की ओर—बरलू में महत्त्वपूर्ण चर्चा—वीर गौतम की जोड़ी—तेरापन्थी नामकरण का इतिहास—नव प्रव्रज्या और प्रथम चातुर्मास—वे तूफानी दिन और मेरु की स्थिरता]

४—प्रचार कार्य : ३५

[मौन साधक—उपदेशक आचार्य—चतुर्विध संघ]

५—महा प्रस्थान ४२

[अदृष्ट का आभास और अन्तिम उपदेश—आत्म-निरीक्षण और आत्म-शोधन—अनशन—आजीवन आहार-परित्याग—अन्तिम दिन]

६—जीवन सम्बन्धी खास-खास बातें : ५५

[महत्त्वपूर्ण वर्ष—महत्त्वपूर्ण स्थान—आयुष्य का ब्यौरा—मुद्रा और शरीर—जन्म कुण्डली—प्रचार-क्षेत्र—स्वामीजी की कृतियाँ—रचनाओं का संक्षिप्त परिचय—शिष्य-सम्पदा—स्वामीजी के जीवन-चरित्र की सामग्री]

खण्ड : २

जीवन-विश्लेषण

१—स्वामीजी के जीवन की पृष्ठभूमिका : ८३

[आरोप और उसका हेतु—संस्थापक नहीं उद्धारक—अन्तर-भावना के स्फुट चित्र—यह आकर्षण क्यों !—अन्तिम समय के दो स्फुट चित्र—जीवन का ध्रुवपद—धर्म-अधर्म का नीर-क्षीर विवेक—जिन-आज्ञा की महानता]

२—एक असामान्य महापुरुष : १०६

३—एक महान् आदर्शवादी संत : १०८

४—एक महान् क्रांतिकारी युग-पुरुष : १२३

[वह ज़माना—पुनर्निर्माण की रूपरेखा—शिथिलाचार की आलोचना—श्रावकों के प्रति भी]

५—[illegible] मूर्ति : १५४

[एक [illegible]—वैराग्य भाव की कथाएँ]

[illegible] १५८

[illegible] का दार्शनिक विश्लेषण—[illegible]—तत्वज्ञान के [illegible]—स्वर्ग-नर्क [illegible]—[illegible]—विषय कैसे [illegible]—सुख-दुःख का कारण—[illegible] पुराने [illegible] देवालय क्यों [illegible]—[illegible] पुत्र के केवल [illegible]—पुण्य बंध कैसे होता [illegible]

[illegible]

—[illegible]

बचपन में बड़े होशियार थे। उनकी बुद्धि बड़ी कुशाग्र थी और उन्हें मौके की अच्छी [illegible] थी।

—यौवन—

बड़े होने पर घर के काम-काज की सार-सम्भाल और देख-रेखमें वे बड़े कुशल निकले। धर्म-ध्यानादि के कामों में वे अग्रसर रहते। साथियों में वे बड़े बुद्धिमान समझे जाते थे और उनकी बड़ी पैठ थी। शुरू से ही वे बड़े दूरदर्शी थे।

संत भीखणजीके गृहस्थ-जीवनमें उपरोक्त गुणों पर प्रकाश डालने वाली अनेक घटनाएँ घटी होंगी परन्तु दुर्भाग्यवश आज हमें उनसे वंचित रह जाना पड़ता है। उनके गृहस्थ-जीवनकी बहुत थोड़ी घटनाओं की [illegible] हमें मिलती है फिर भी वे उनकी असाधारण तीक्ष्ण बुद्धि और दूरदर्शिता का परिचय देती हैं। हम उनमें से दो-एक घटना यहाँ देते हैं।

एक बार की बात है कि संत भीखणजी के साथियों [illegible] के गहनों की चोरी हो गई। वहाँ एक अन्धा कुम्हार रहता था। [illegible] और बड़ा [illegible] पूरा विश्वास [illegible] संत भीखणजी [illegible] वह कुम्हार उनके पास पहुँचा और कुछ [illegible] और [illegible] से पूछने [illegible] संत भीखणजी को [illegible] [illegible] वह [illegible] हुई [illegible] कुम्हार [illegible] कुम्हार कुछ [illegible] है [illegible] परन्तु [illegible]

थक जायगा।" ठाकुर होशियार हो गया और जल्दी-जल्दी चलने लगा। दोनों रास्ता तय कर दिन रहते-रहते घर पहुँचे। स्वामीजी की बुद्धि काम न करती और वे चतुराई से काम न लेते तो शायद दोनों को रास्ते में ही कष्ट से रात काटनी पड़ती।

संत भीखणजीको सामाजिक कुरीतियों से बड़ी चिढ़ थी। एक बार वे ससुराल गए। भोजनके लिए गए तो स्त्रियाँ गालियाँ गाने लगीं-"थे तो कालो घणो ने कावरोजी लाग।" भीखणजीने भोजन करना बंद कर दिया। उनका साला लगड़ा था। इस बातका सहारा लेकर वे विनोद करते हुए बोले: "आप अंधे कोढ़ेको तो अच्छा बतलाते हैं और अच्छे को बुरा। क्या यह ठीक है?" फिर 'यह मुझे पसन्द नहीं है'—ऐसा कह अपना विरोध दिखाते हुए बिना भोजन किए ही उठ चले। उनके इस तीव्र विरोध का फल जो होने का था वही हुआ।

—विवाह—

भीखणजी का विवाह कब हुआ यह मालूम नहीं परन्तु पता चलता है कि वह छोटी उमरमें ही कर दिया गया था। उनके एक पुत्री हुई थी। स्वामीजी स्वभाव से ही वैरागी थे। इस प्रकार बाल्यावस्था में ही वैवाहिक जीवन में प्रवेश करने पर भी उनकी आन्तरिक वैराग्य भावना में फर्क नहीं आया। भोग और विलासों में उन्हें चैन न मिलता और संसार से वे उद्विग्न और खिन्न चित्त रहते थे। उनका गृहस्थ-जीवन बड़ा संयत था। उनकी पत्नी भी उन्हीं की तरह धार्मिक प्रकृति की और बड़ी विनयशील थी। ऐसी युगल जोड़ी कम मिलती है।

—वैराग्य और दीक्षा—

संत भीखणजी के माता-पिता गच्छवासी सम्प्रदायके अनुयायी थे। अतः पहले-पहल भीखणजी का इसी सम्प्रदायके साधुओंके पास आना-जाना शुरु

हुआ। बादमें इनके यहाँ आना-जाना छोड़ दे पोतियाबंध साधुओंके अनुयायी हुए। इनके प्रति भी उनकी भक्ति विशेष समय तक टिक न सकी और वे बाईस सम्प्रदाय की एक शाखा विशेष के आचार्य श्री रघुनाथजी की सम्प्रदाय के अनुयायी हुए।

इस तरह भिन्न-भिन्न सम्प्रदायोंके संसर्गमें आने से चाहे और कोई लाभ हुआ हो या न हुआ हो परन्तु इतना अवश्य हुआ कि सांसारिक जीवनके प्रति भीखणजी की उदासीनता दिन-पर-दिन बढ़ती गई और वह यहाँ तक बढ़ी कि उन्होंने दीक्षा लेनेका विचार ठान लिया। उनके साथ उनकी पत्नीने भी दीक्षा लेनेका विचार कर लिया, और दोनों ब्रह्मचर्यका पालन करने लगे। एवं युवा अवस्थामें ब्रह्मचर्य पालन का नियम ले दोनोंने उठते हुए यौवन की उद्दाम तरंगों पर वैराग्य और संयम की गहरी मुहर लगा दी। प्राप्त भोगों को ठुकरा कर दोनोंने सच्चे त्यागी होनेका परिचय दिया। कहा भी है—

वत्थगन्धमलंकारं इत्थीओ सयणाणि य।
अच्छन्दा जे न भुंजन्ति न से चाइ त्ति वुच्चइ॥
जे य कन्ते पिए भोए लद्धे वि पिट्ठिकुव्वइ।
साहीणे चयई भोए से हु चाइ त्ति वुच्चई॥

अर्थात्—जो वस्त्र, गन्ध, अलंकार, स्त्री और शयन का परवशतासे सेवन नहीं करता वह कोई त्यागी नहीं है; पर जो कान्त और प्रिय भोगों को भी पीठ दिखा देता है और स्वाधीन भोगोंको भी छिटका देता है वही वास्तवमें त्यागी है।

ब्रह्मचर्यके नियमके साथ-साथ एक अन्य नियम भी दोनोंने ग्रहण किया। उन्होंने यह प्रतिज्ञा की कि जब तक दीक्षा की इच्छा पूरी न होगी तब तक दोनों एकान्तर—एक दिनके बाद एक दिन—उपवास किया करेंगे। इस प्रतिज्ञा

के कुछ अर्से बाद ही श्रीमद् भीखणजी की पत्नी का स्वर्गवास हो गया। अब वे अकेले ही रह गए। इस वियोगसे उनकी वैराग्य-भावना को और भी उत्तेजना मिली। "काल का क्या भरोसा है? जैसे कुश की नोक पर टिके हुए जल-बिंदु को गिरते देर नहीं लगती वैसे ही यह जीवन कब विलीन हो जाय क्या ठिकाना है? शुभ काममें एक समय का भी प्रमाद करना भयंकर भूल है।" भीखणजी रात-दिन इन्हीं विचारों में लीन रहने लगे। लोगोंने उनको फिर विवाह करने के लिए समझाया परन्तु उन्होंने किसी की न सुनी। अच्छे सम्बन्ध मिलने [illegible] भी उन्होंने सबको ठुकरा दिया और यावज्जीवन ब्रह्मचर्य पालन की प्रतिज्ञा कर ली। संत भीखणजी का वैराग्य कितना उत्कट था, यह उपरोक्त घटना से साफ-साफ प्रगट होता है। दीक्षा लेनेके पूर्व उन्होंने अपनी योग्यता को किस प्रकार कसौटी पर कसा था, इसका अनुमान एक अन्य घटना से भी होगा।

जब भीखणजी का दीक्षा लेने का विचार हुआ तो उन्होंने अपनी अक्षमाइश के लिए कैरका धोवण हुआ (कैर उबाल कर जो जल निकाल दिया जाता है) जल लिया। उसे एक मार्त्तिक लोंदेमें डाल कर उसमें राख मिला उसे बड़ेक (हरिवर्णोंकी जड़) में रख दिया। बहुत देर बाद जब वह जल निथर गया—स्वच्छ हो गया तो उसे पिया। इससे उनको बड़ा कष्ट हुआ। साधु बनने पर धोवन जल पीनेका नियम वे निभा सकेंगे या नहीं इसी जाँचके लिए उन्होंने निम्बादमें-निम्बाद धोवन जल को लेकर अपनी अजमाइश की। दीक्षा लेनेके कोई ४३ वर्ष बाद संत भीखणजीने हेमराजजी स्वामीको अपने जीवन की इस घटनाका जिक्र किया और बोले "साधु होनेके बाद आज तक वैसा निरस पानी पीनेका काम नहीं पड़ा।"

इस तरह अपनेको अनेक तरहसे ना-नाप कर वे भीतर ही भीतर मुनि-जीवनके लिए सम्पूर्ण रूपसे तैयार हो गए और फिर दीक्षा लेनेका विचार

ओंके सम्राट, त्यागियों के मुकुटमणी तथा तत्त्वज्ञान और अखण्ड आत्म-ज्योतिके धारक महापुरुष बनकर निकले।

दीपांबाई ने आखिर दीक्षाकी अनुमति दे दी। अपने वैधव्य जीवन के एक मात्र सहारे और दुलारे पुत्रको इस प्रकार दीक्षा की अनुमति देकर दीपांबाईने जिस साहस और धर्मप्रेम की भावनाका परिचय दिया वह एक महान् माताके अनुरूप ही था। उनकी यह न्यौछावर दुनिया को एक कितनी बड़ी देन थी इसका आभास पाठकों को आगे चलकर होगा।

दीक्षा लेते समय संत भीखणजीने करीब १०००) रुपये अपनी माताके पास छोड़े।

संत भीखणजीकी दीक्षा बगड़ी शहर में हुई। आचार्य रुघनाथजीने खुद अपने हाथसे उन्हें दीक्षा दी। उस समय संत भीखणजी की अवस्था २५ वर्ष की थी। इस तरह २५ वर्ष का यह तेजस्वी युवक अद्भुत वैराग्य भावनाओंसे उच्छ्वासित हो त्याग मार्ग का बीड़ा उठा निःश्रेयसके मार्ग पर अग्रसर हुआ।

आत्माके उद्धारमें प्रवृत्त होता है। ज्यों-ज्यों शारीरिक वेदनाका वेग बढ़ता है, त्यों-त्यों उसके हृदयकी वृत्तियोंकी अन्तर्मुखता भी बढ़ती जाती है और उसकी आत्मा अधिकाधिक सत्यके दर्शनके लिये दौड़ने लगती है। सांसारिक प्राणीकी दृष्टि जहां मिथ्या आत्म-सन्मान, बाह्य-राग और प्रतिष्ठाकी खोज करती है वहां मुमुक्षुकी दृष्टि अन्तरकी ओर ताकती है और अपने किये हुए बुरे कार्योंका पश्चाताप कर आत्म-शुद्धि करती है। मुमुक्षु कभी मानापमानकी धारामें बह भी जाता है तो भी उसे तैर कर बाहर आनेमें देर नहीं लगती। सन्त भीखणजीके विषयमें भी ऐसा ही हुआ। वे आन्तरिक मुमुक्षु थे और इसीलिए अपनी भूलका इस तरह प्रमार्जन कर सके। सन्त भीखणजीको अब सत्यके दर्शन हो चुके थे फिर भी वे अधीर न हुए। आत्मार्थी देख-देख कर पैर धरता है। वह अधीरता को महान् पाप समझता है। वह अपने विचारोंको एक बार दो बार नहीं परन्तु बार-बार सत्य की कसौटी पर कसता है और जब जरा भी सन्देह नहीं रह जाता तब जो अनुभवमें आता है उसे साफ-साफ प्रगट करता है। स्वामीजीने भी अन्तिम निर्णयके लिए इसी मार्गका अवलम्बन किया। उन्होंने धीर चित्त से दो बार सूत्रों का सूक्ष्म अध्ययन किया। गुरु की पक्ष ले झूठ को सत्य प्रमाणित करना जहां महान् दुःख का कारण होता वहां गुरुके प्रति भी अधीरज वश कोई अन्याय कर बैठना दुर्गति का कारण था। इस दुधारी तलवार से बचने के लिए मौन स्वाध्याय और आगम दोहन ही एक मात्र उपाय था। इस दोहन से उन्हें इस बात का पूरा-पूरा भरोसा हो गया कि श्रावकों का पक्ष सत्य है और साधु लोग वास्तवमें ही जिन-आज्ञा का तिरोभाव कर रहे हैं। अब अपनी भूल को सुधारना उन्होंने जरूरी समझा और निर्भिकता से अपना निर्णय देते हुए बोले— "श्रावको! तुमलोग सच्चे हो। हमलोग झूठे हैं। गुरुसे मिलकर हमलोग शुद्ध मार्ग को ग्रहण करेंगे।" संत भीखणजी की इस खरी बातको सुनकर श्रावक

अग्रसर हुए। रास्ते में छोटे-छोटे गाँव पड़ते थे। इसलिये साधुओंके दो दल कर दिये। एक दलमें साधु वीरभाणजी थे। श्रीमद् भीखणजी ने वीरभाणजी को समझा दिया था कि यदि वे रघुनाथजी के पास पहले पहुँचे तो वहाँ इस विषय की कोई चर्चा न करें। क्योंकि यदि पहले ही बात सुनकर पक्ष-पात हो गया तो समझानेमें विशेष कठिनाई होगी। उन्होंने कहा—"मैं खुद पहुँच कर सब बातें विनय पूर्वक उनके सामने रखूँगा और उन्हें सत्य मार्ग पर लाने की चेष्टा करूँगा।"

चलते-चलते साधु वीरभाणजी ही पहिले सोजत पहुँचे। उस समय आचार्य रघुनाथजी वहीं थे। श्री वीरभाणजी ने वन्दना की। आचार्य रघुनाथजी ने पूछा—"श्रावकों की भ्रान्तियाँ दूर हुईं या नहीं?" साधु वीरभाणजी ने उत्तर दिया—"आपलोगोंकी कोई शंका होगी तब न दूर होगी! उन्होंने तो सिद्धान्तों का सच्चा भेद पा लिया है। हमलोग आधाकर्मी आहार करते हैं। एक ही जगह से रोज-रोज गोचरी करते हैं। वस्त्र पात्रादि उपकरणों के निश्चित परिमाण का उल्लंघन करते हैं। अभिभावकों की आज्ञा बिना ही दीक्षा दे डालते हैं, हर किसी को प्रव्रजित कर लेते हैं। इस तरह अनेक दोषों का हमलोग सेवन करते हैं और केवल सेवन ही नहीं, परन्तु उनको उचित भी बतलाते हैं। श्रावक सत्य ही कहते हैं, उनकी शंकाएँ मिथ्या नहीं हैं।" यह सुनकर आचार्य रघुनाथजी स्तम्भित हो गये। उन्होंने कहा—"यह क्या कहते हो?" वीरभाणजी ने कहा—"मैं सत्य ही कहता हूँ। मैंने जो कहा वह तो अल्प है। पूरी बात तो भीखणजी के आनेसे ही मालूम होगी।" इस तरह धीरज न होने से वीरभाणजी ने सारी बात कह डाली। श्रीमद् भीखणजी इस घटना के बाद पहुँचे। आते ही उन्होंने आचार्य महाराज का वन्दन-नमस्कार किया। परन्तु उन्होंने हाथ न जोड़े और न वन्दन-नमस्कार स्वीकार किया। यह देख कर श्रीमद् भीखणजी समझ गये कि हो न हो

वीरभाणजी ने पहले ही सारी बात कह दी है। श्रीमद् भीखणजी ने इस उदासीनता का कारण पूछा, तब आचार्य महाराज ने उत्तर दिया—"तुम्हारे मनमें शंकाएँ पड़ गई हैं। तुम्हारा और हमारा दिल नहीं मिल सकता। आज से हमारा और तुम्हारा आहार भी एक साथ नहीं होगा।" श्रीमद् भीखणजी ने मन में विचार किया—"इसमें और इनमें दोनों में ही समकित नहीं है। परन्तु अभी बहस करना निरर्थक है। शायद वे सोचते हों कि मैं हर हालत में इनसे अलग होना चाहता हूँ और इन्हें गुरु नहीं मानना चाहता। इसलिये उचित है कि मैं उनकी इस धारणा को दूर कर उनके हृदय में विश्वास उत्पन्न करूँ कि मेरे विचार ऐसे नहीं हैं। मुझे शिष्य रूप में रहना अभीष्ट है, बशर्ते कि सन्मार्ग के अनुसरण में कोई रुकावट न हो। यह सोच कर वे बोले—"यदि व्यर्थ ही मेरे मन में शंकाएँ पड़ गई हों तो उन्हें दूर कीजिए। मुझे प्रायश्चित्त द्वारा शुद्ध कर भीतर लीजिये।" इस तरह उन्होंने आचार्य महाराज की व्यर्थ आशंका को दूर कर सहभोजी बन, वार्तालाप करने का सुअवसर प्राप्त किया।

इसके बाद सुअवसर देखकर श्रीमद् भीखणजी ने आचार्य महाराजके साथ विनम्रता पूर्वक आलोचना शुरू की। उनका कहना था—"हमलोगोंने आत्म-कल्याण के लिये ही घरबार छोड़ा है अतः टेक छोड़कर सच्चे मार्ग को ग्रहण करना चाहिये। हमें शास्त्रीय वचनों को प्रमाण मानकर मिथ्या मान्यतायें न रखनी चाहिये। पूजा-प्रशंसा तो कई बार मिल चुकी है, पर सच्चा मार्ग मिलना बहुत ही कठिन है। अतः सच्चे मार्गकी तुलनामें इन बातों को नगण्य समझना चाहिये। शुद्ध जैन मार्गको अंगीकार करने पर आप ही हमारे पूज्य रहेंगे। आप पुण्य-पाप का मेल मानते हैं। एक ही काममें पुण्य और पाप दोनों समझते हैं—यह ठीक नहीं है। अशुभ योगसे पापका बन्ध होता है और शुभ योगमें पुण्य का संचार होता है, परन्तु ऐसा कौन सा योग है जिससे

एक ही साथ दुःख और पाप दोनों का संचार होता हो ! अतः आप अपने पक्ष को छोड़कर सच्चे मार्ग को ग्रहण कीजिये। सूत्रों के वचनों पर श्रद्धा रखें। जिन-आज्ञा के बाहर कोई धर्म नहीं है। आभ्यन्तर आँखें खोल कर और जिन-वचनों पर ध्यान देकर पकड़ी हुई टेक को छोड़ देना चाहिये। न शुद्ध श्रद्धा ही हमारे हाथ आई है, न शुद्ध आचार। हम लोगों ने आत्मा के निस्तार के लिये ही घर छोड़ा है। इसलिये आपको बार-बार निवेदन करता हूँ और अन्य कोई कायदा नहीं है। सब को एक दिन परभव में जाना है। श्रद्धा का प्राप्त होना दुर्लभ है। जिसके बिना आत्मा का कल्याण नहीं। अतः पक्षपात को छोड़ दें; सूत्रों की बात मानने पर आपही हमारे नाथ हैं।" परन्तु आचार्य रघुनाथजी पर भीखणजी की इन बातों का कोई असर नहीं पड़ा उल्टे वे अधिक क्रुद्ध हो उठे। संत भीखणजी ने सोचा अब [illegible] करने से काम नहीं होगा [illegible] मौका देख कर फिर उन्होंने प्रार्थना की कि हम सब चातुर्मास एक साथ [illegible] परन्तु आचार्य रघुनाथजी [illegible] करने को राजी नहीं हुए।

इसके बाद भीखणजी [illegible] आचार्य रघुनाथजी से [illegible]

[illegible]

वीरभाणजी ने पहले ही सारी बात कह दी है। श्रीमद् भीखणजी ने इस उदासीनता का कारण पूछा, तब आचार्य महाराज ने उत्तर दिया—"तुम्हारे मनमें शंकाएँ घर कर गई हैं। तुम्हारा और हमारा दिल नहीं मिल सकता। आज से हमारा और तुम्हारा आहार भी एक साथ नहीं होगा।" श्रीमद् भीखणजी ने मन में विचार किया—"हममें और इनमें दोनों में ही समकित नहीं है। परन्तु अभी बहस करना निरर्थक है। शायद ये सोचते हों कि मैं इस हालत में इनसे अलग होना चाहता हूँ और इन्हें गुरु नहीं मानना चाहता। इसलिये उचित है कि मैं उनकी इस धारणा को दूर कर उनके हृदय में विश्वास उत्पन्न करूँ कि मेरे विचार ऐसे नहीं हैं। मुझे शिष्य रूप में रहना अभीष्ट है, बशर्ते कि सम्मार्ग के अनुसरण में कोई रुकावट न हो।" यह सोच कर वे बोले—"यदि स्वयं ही मेरे मन में शंकाएं घर गई हों तो उन्हें दूर कीजिए। मुझे प्रायश्चित द्वारा शुद्ध कर भीतर लीजिये।" इस तरह उन्होंने आचार्य महाराज की व्यर्थ आशंका को दूर कर सहयोगी बन वार्तालाप करने का सुअवसर प्राप्त किया।

इसके बाद सुअवसर देखकर श्रीमद् भीखणजी ने आचार्य महाराजके साथ [illegible] तक वार्तालाप शुरू की। उनका कहना था—"हमलोगोंने आत्म-कल्याण के लिए ही संयम लिया है। अब हम [illegible] मार्ग को बहुत [illegible] चाहिए। हमें शास्त्रोक्त वचनों को प्रमाण मानकर मिथ्या मान्यताओं को छोड़ना चाहिए। [illegible] बार [illegible] चुका है, [illegible] मार्ग [illegible] बहुत ही [illegible] है। अब [illegible] सूत्रों [illegible] बातों को [illegible] चाहिए। [illegible] आचार कायम कर आप [illegible] हमारे पूज्य [illegible] का [illegible] है। [illegible] ही आचार्य पूज्य और [illegible] मानते हैं—यह ठीक नहीं है। [illegible] होता है और [illegible] करना है परन्तु [illegible] है जिससे

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] । [illegible] के [illegible] पर [illegible] [illegible] । [illegible] के [illegible] कोई धर्म नहीं है। [illegible] और [illegible] पर ध्यान देकर [illegible] छोड़ देना चाहिये। न [illegible] [illegible] । इन दोनों में [illegible] के लिये ही [illegible] हैं। इसलिये [illegible] निवेदन करता हूँ और अन्य कोई [illegible] नहीं है। [illegible] है। [illegible] दुर्लभ है। [illegible] नहीं। [illegible] [illegible] है।" परन्तु आचार्य [illegible] [illegible] का कोई [illegible] नहीं [illegible] । इससे वे अधिक [illegible] हो गये। [illegible] [illegible] नहीं होता। [illegible] के लिये [illegible] । [illegible] उन्होंने [illegible] कि [illegible] [illegible] किया जा सके। परन्तु आचार्य [illegible] करने के लिये राजी नहीं हुए।

इसके बाद [illegible] कि आचार्य [illegible] और फिर [illegible] पर आने का अनुरोध किया। परन्तु उन्होंने [illegible] न हुए। अब [illegible] कि आचार्य [illegible] नहीं [illegible] । तब उन्होंने सोचा कि अब मुझे [illegible] । [illegible] आचार्य [illegible] से [illegible]

[illegible]

[illegible]

—वीर-गोविन्द की जोड़ी—

अब संत भैरवजीने [illegible] के लिये कुछ [illegible] लेकिन [illegible] और इनके लिये वे [illegible] करने लगे। [illegible] भैरवजीके [illegible] दोनोंने [illegible] भैरवजीके [illegible] साधु थे। [illegible] भी थे। [illegible] थे। वे [illegible] के लिये [illegible] थे। [illegible] प्रकृति [illegible] यह देखकर [illegible] भैरवजी [illegible] करते हैं [illegible] है। [illegible]

[illegible]

इस प्रकार कुल १३ श्रावक भी उनके अनुयायी हो गए। १३ साधुओंमें ५ स्वामी रघुनाथजीके, जयमलजीके, ६ कानजीके और २ अन्य सम्प्रदायके थे।

उस समय साधु निश्चित स्थानोंमें रहने लगे थे। इन निश्चित स्थानोंको 'स्थानक' कहा जाता था और वे साधुओंके ठहरनेके निमित्त ही बनाए हुए होते थे। शाक्य मुनि गौतम बुद्ध और भगवान महावीर समकालीन होने पर भी जहाँ बौद्ध मुनि विहारोंमें ठहरते वहाँ जैन मुनियोंके लिए निश्चित स्थानोंमें ठहरने का ही निषेध था। निश्चित स्थानोंमें ठहरना जैन धर्ममें अनाचार—शिथिलाचार—बताया गया है और आधाकर्मी-दोषयुक्त सेवन कहा गया है। अतः सन्त भीखणजी इन स्थानकोंमें ठहरनेके घोर विरोधी थे। स्वामी रघुनाथजी और उनके शिष्योंमें एक बड़ा अन्तर यह भी था। चूंकि संत भीखणजी और उनके साथी—साथी साधुओंने स्थानकों का बहिष्कार कर दिया था अतः उनके अनुयायी श्रावकोंने भी सामायिक आदि धर्म-क्रियाओंके लिये स्थानक जाना छोड़ दिया।

एक दिन बाजारकी खुली दुकानमें कई श्रावक सामायिक और पौषध कर रहे थे। उस दिन उस नगरके दीवान श्री फतेहचन्दजी सिंघी का बाजार होकर निकलना हुआ। बाजारके बीचोंमें श्रावकोंको सामायिक पौषध करते देख उन्हें आश्चर्य हुआ। कौतूहल वश उन्होंने श्रावकोंसे कारण पूछा। पूछा जाने पर श्रावकोंने स्वामी रघुनाथजीसे संत भीखणजीके अलग होनेकी बात कह सुनाई और उनके स्थानक छोड़ने आदिके निश्चय बताए। साथमें उनके साधुओंकी संख्या तेरह है और श्रावक भी तेरह हैं यह भी बताया।

पासमें खड़े हुए एक सेवग कविने जितने साधु हैं और जितने श्रावक हैं श्रावकोंसे सुनकर दोहा कहा—'१३ साधु हैं और १३ हैं श्रावक'। यह सुनकर निकट खड़े लोग बोले: 'अहा! तेरापंथ है—

'तेरा' (तेरह) ही साधु है और 'तेरा' (तेरह) ही श्रावक। सिंघीजीके पासही एक सेवक जातिका कवि खड़ा था। वह यह सब वार्तालाप बड़ी दिलचस्पीसे सुन रहा था। उसने तुरन्तही एक दोहा बना सुनाया जिसमें संत भीखणजीके मत को १३ साधु व १३ श्रावकोंके विचित्र संयोग के कारण उसने "तेरापन्थी" कहकर सम्बोधित किया।

"आप आपरो गिलो करे
ते तो आप-आपरो मन
सुणज्यो रे शहर रा लोकां
ए "तेरापन्थी" तन्त"

उस सेवक कविके मुखसे "तेरापन्थी" नामकरण सुनकर संत भीखणजीके विरोधी लोगोंने इस शब्दको मजाकके रूपमें लाना शुरू कर दिया और इस नव संस्थाके मार्गको उड़ानेके लिये उसे "तेरापन्थी" कहकर सम्बोधित करने लगे।

यही बात संत भीखणजीके कानोंमें भी पड़ी। दैव द्वारा आकस्मिक प्रदत्त "तेरापन्थी" शब्द उनको बड़ा अर्थ-गर्भित पूर्ण मालूम दिया। उनकी अन्तर विचार-धारा की सच्ची अभिव्यक्ति उनको इसी तरह शब्द में संभव मालूम दी। अपनी आश्चर्यकारी प्रत्युत्पन्न बुद्धिका सहारा ले उन्होंने इस शब्दकी बड़ी सुन्दर व्याख्या की और अपने मन्तव्यके अभिव्यञ्जनके लिये इसी अर्थसूचक शब्दको ग्रहणके लिए अपना लिया। संख्यामें १३ संख्या "तेरा" कही जाती है और 'तेरा' इस शब्दका अर्थ तुम्हारा भी होता है। इन दोनों अर्थोंको सामने रखकर संत भीखणजीने "तेरापन्थी" शब्दका अर्थ-स्पष्टीकरण इस प्रकार किया —

"हे प्रभु! तेरा ही पन्थ हमने पसन्द किया है इसलिये हम तेरापन्थी हैं।

तेरे पन्थमें पाँच महाव्रत, पाँच समिति और तीन गुप्ति ये तेरह बने हैं, हम इन तेरह बातोंको पूरी तरह मानते हैं और उनका पालन करते हैं, अतः तेरापन्थी हैं।

केलवेमें श्रीमद् आचार्य भीखणजीको ठहरनेके लिये शीघ्र स्थान न मिला। वहाँ 'अंधेरी ओरी' नामक एक स्थान था। उस स्थानमें हवा और प्रकाशका नाम मात्र का भी प्रवेश न था। इसलिये 'वह अंधेरी ओरी'—काली कोठरी कही जाती थी। चौमासेके लिये स्वामीजीको यही स्थान बताया गया और इसी स्थानमें स्वामीजीने चौमासा किया। यह स्थान भयानक माना जाता था; परन्तु साहसी और निर्भीक आचार्य भीखणजीके पास डर फटकता भी न था। रातमें संत भारीमालजी मात्रा परठनेके लिये बाहर निकले। उस समय एक सर्प आकर उनके पैरोंमें लिपट गया। भारीमालजी को गये हुए कुछ विलम्ब हो जानेसे आचार्य भीखणजी भी बाहर आये। संत भारीमालजी चुपचाप स्थिर खड़े हुए थे। स्वामीजीने इस तरह खड़े रहनेका कारण पूछा तो संत भारीमालजी ने जवाब दिया-"उरपर जातिका जीव पैरमें लिपटा हुआ है।" स्वामीजी सर्पको सम्बोधन कर बोले-"हे आर्य ! हम लोग साधु हैं। किसीको कष्ट नहीं देते। अगर हमारे इस मकानमें ठहरनेसे तुम्हें कष्ट होता हो तो हम अन्य स्थानमें चले जांय। अन्यथा इस बालक सन्तके पैरोंमें लिपट कर क्यों परिषह दे रहे हो ?" स्वामीजी के ऐसा कहते ही वह सर्प एक सपाटेसे एक लम्बी लकीर खींचता हुआ वहांसे चला गया। स्वामीजी सोये तो उन्हें एक स्वप्न दिखाई दिया और यह आवाज सुनाई पड़ी—"हे साधु पुरुष ! आप लोगोंके यहां रहनेसे मुझे जरा भी कष्ट नहीं है। केवल मेरी खींची हुई लकीरको उल्लंघन कर कोई मर्यादा न रहे"।

इस घटनाके बाद और कोई अन्य उपसर्ग नहीं हुआ और चौमासा निर्विघ्न समाप्त हुआ।

श्रीमद् आचार्य भीखणजी की वाणी में एक अमृत-रस था। उनकी वाणी सीधी हृदय पर असर करती और कायापलट कर देती। वे हृदय परिवर्तन की नीति के हिमायती थे, और उनकी उपदेश शैली में ऐसा करने की एक अद्भुत आत्मिक शक्ति थी। सर्पों को दूर करने के लिए भी उन्होंने अपने आत्मिक बल का ही सहारा लिया। 'साधु

माना कि धार पैनी थी, पर जीवन और मरण को समान—आत्मवत् मान समझने वाले के लिए उस पर चलना जरा भी कठिन नहीं था। वे गाँव-गाँव धर्मोपदेश देते हुए विचरने लगे। यह देख कर आचार्य रुघनाथजी के क्रोध का पारा और भी गर्म हो गया। उन्होंने लोगों को अनेक तरह से बहकाना शुरू किया। उनके बहकावे में आकर लोग स्वामीजी को अपन्थी और गोशाले की उपमाएं देने लगे। कोई कहता- 'ये निन्हव हैं इनकी संगत मत करना।' कोई कहता—"इन्होंने देव गुरु धर्म को उठा दिया है। ये जीव बचाने में अठारह पाप बतलाते हैं।" इस तरह चारों ओर से कटु वचनों के प्रहार होने लगे। कोई प्रश्न करने के बहाने और कोई दर्शन करने के बहाने आकर उनको खरी-खोटी सुना जाता। परन्तु आचार्य भीखणजी क्षमा-शूर थे। वे इन प्रहारों को फूलों की बौछार की तरह झेलते। द्वेष उन्हें छूता भी नहीं। उनके भावों में अत्यन्त मधुरता रहती। समभाव पूर्ण सहनशीलता के वे ज्वलन्त उदाहरण थे।

श्रीमद् आचार्य भीखणजी के कष्टों की इतने ही तक सीमा न थी। उन्हें केवल तीर के समान तीखे वचनों को ही नहीं झेलना पड़ा, पर अन्य अनेक प्रकार के कष्ट भी उन्हें उठाने पड़े। आचार्य रुघनाथजी ने लोगों को यहां तक बहका दिया था कि उन्हें ठहरने के लिए कोई स्थान तक नहीं देता। वे जहां जाते वहां एक विरोध का दावानल-सा सुलगता दिखाई देता और अनेक अनुभव होते। एक बार वे बिलाड़े पधारे। उनके पहुंचने की खबर मिलते ही वहां के लोगों ने बन्दोबस्त किया—"जो भीखणजी को १ रोटी देगा उसे ११ सामायिक दण्ड की आवेगी।" एक दिन किसी के घर गोचरी पधारे तो उस घरकी बाई बोली "यदि मैं आपको रोटी दूं तो मेरी ननद की, जो स्थानक में बैठी सामायिक कर रही है, सामायिक गल जाय—नष्ट हो जाय।" इस तरह जनता में नाना प्रकार के भ्रम फैला कर आचार्य भीखणजी को विचलित करने की चेष्टा की गई। परन्तु इन विघ्न बाधाओंसे वे फौलादी पुरुष क्या घबराते और क्या मार्ग च्युत होते। मेघकी

काली घटायें सूर्यको आच्छादित कर सकती हैं, पर उसकी हस्तीको नहीं मिटा सकतीं। आचार्य रुघनाथजीकी हरकतें भी मरणांतक कष्ट पहुँचा सकती थीं परन्तु आचार्य जैसे वीर पुरुषको डिगानेकी ताकत उनमें क्या होती!

"जो लोग सच्चे धार्मिक हैं, उनके अन्दर एक ऐसी स्थिरता होती है जो संपत् विपत्से विचलित नहीं होती। आध्यात्मिक जीवनका सार ही यह है कि आत्मा इतनी महान् है कि भयानकसे भयानक विपत्ति भी उसे डिगा नहीं सकती। जो आत्मवान् हैं वे दुनियाके ऊपर रहते हैं, दुनियाको उन्होंने जीत लिया है। उन पर गोलियां बरस रही हों तो भी वे सच बोल सकते हैं, उनकी बोटी-बोटी कटी जाय तो भी प्रतिशोधकी भावना उनके हृदयमें आग नहीं लगा सकती। उनकी दृष्टि विश्व व्यापिनी होती है। इससे किसी सांसारिक आसक्ति या स्वार्थमें रत होना वे मूर्खता और व्यर्थता समझते हैं। बलिदान जो कीमतका विचार नहीं करता, आत्मोत्सर्ग जो बदलेमें कोई चीज नहीं चाहता, यही उनका नित्य जीवन होता है।" आचार्य भीखणजीके सम्बन्धमें ये विचार सम्पूर्ण रूपसे लागू पड़ते हैं।

उन मुसीबतोंके दिनोंका थोड़ा सा वर्णन आचार्य भीखणजीने अपने परम शिष्य हेमराजजी स्वामीसे किया था। वह कितना हृदय-द्रावक है, यह पाठक पढ़कर ही अनुभव कर सकेंगे:

"हम लोग जब रुघनाथजीसे अलग हुए तबसे पाँच वर्ष करीब तक तो घी चुपड़ी की तो बातही क्या रूखा-सूखा आहार भी पूरा नहीं मिलता था। कपड़ेका तो यह हाल था कि कभी १।) रुपयेकी कीमतकी कपड़ी (रेजी) मिल जाती तब भारीमलजी स्वामी कहते कि आप इसकी पछेवड़ी बना लीजिये। मैं कहता—'इसकी पछेवड़ी नहीं, चोलपट्टे बनाओ—एक तुम्हारे लिये और एक हमारे लिये।' जो कुछ आहार-पानी मिलता उसे लेकर सब साधु जंगलमें चले जाते। वहाँ आहारको धूपमें रख देते और फिर सब साधु धूपमें आतापना लेते। सन्ध्याके समीप गांवमें आते। ऐसा कष्ट सहन करते और धर्म बढ़ाते।"

५

५

प्रचार कार्य -

—मौन साधक—

[illegible] धर्म पर [illegible] पूर्ण [illegible] है। इन्होंने [illegible] हुए, प्रचार और विचार-[illegible] लिये [illegible] विचार धाराको [illegible] कोई [illegible] नहीं [illegible] और [illegible] कर हम [illegible] है और विचार [illegible] और [illegible] है [illegible] रहे है। [illegible] था। [illegible] और [illegible] देख कर [illegible] विचार [illegible] धर्म के [illegible] रहे हैं। जैन [illegible] और विचारका पूर्ण [illegible] है। [illegible] हैं और [illegible] अपने विवेक बुद्धिसे [illegible] विचार परम्परासे चलते हैं। कुछ जैन [illegible] बैठे हैं। ऐसे [illegible] धर्म-प्रचारका कोई [illegible] नहीं दिखाई देता और उनके लिए [illegible] केवल समय [illegible] है। इस [illegible] मुश्किल है। अतः धर्म प्रचारके और [illegible] करना चाहिये।" ऐसा विचार कर ये [illegible] पड़े। [illegible] और [illegible] में वे [illegible] है। उन्होंने [illegible] के [illegible] और [illegible] यह [illegible] चले। [illegible]

—चतुर्विध-संघ—

आचार्य भीखणजीके इस तरह अथक परिश्रम से धीरे-धीरे उनके सिद्धान्तोंका प्रचार होने लगा। साधु, श्रावक और श्राविकाओं की संख्या बढ़ने लगी। पर कई वर्षों तक संघमें साध्वियाँ न हुईं। इस पर किसीने आक्षेप करते हुए कहा:— "स्वामीजी! आपके केवल तीन ही तीर्थ हैं—साधु, श्रावक और श्राविका। साध्वियाँ न होनेसे आपका यह तीर्थ रूपी मोदक खांडा— अपूर्ण ही है"। स्वामीजीने उत्तर दिया "मोदक खांडा भले ही हो पर है वह चौगुनी चीनीका। अतः स्वादमें अनुपम है"। यह उत्तर देकर स्वामीजीने बतला दिया कि मोदक चाहे पूरा हो पर अगर चीनी उसमें न रहे तो वह स्वाद रहित होगा। इसी तरह संघ में साधु, साध्वी, श्रावक श्राविका चारों ही हों पर सच्चे चारित्रका अभाव हो तो वह संघ नाम मात्रका ही संघ होगा। संघ चतुर्विध न होने पर भी यदि उसमें गुणी, चारित्रवान आत्मायें हैं, तो वह ही वास्तवमें सच्चा संघ है।

इसके थोड़े दिन बाद ही आचार्य भीखणजीके संघमें तीन साध्वियाँ भी हो गईं उनकी प्रव्रज्याकी कथा बड़ी ओज पूर्ण है।

एक ही साथ तीन महिलायें आचार्य महाराज से दीक्षा का अनुनय करने लगीं। जैनसूत्रोंके अनुसार कम से कम तीन साध्वियाँ एक साथ रहनी आवश्यक हैं। आचार्य महाराज ने विचार किया यदि प्रव्रज्या लेनेके पश्चात इनमेंसे यदि एकका भी किसी कारणसे वियोग हुआ तो एक कठिन परिस्थिति उत्पन्न हो जायेगी। उस अवस्था में बाकी दो साध्वियोंके लिये सलेखना करनेके अतिरिक्त और कोई चारा नहीं रह जायेगा। अतः इस आगेकी बातको सोच समझ कर ही कार्य करना चाहिये।" यह विचार कर उन्होंने सारी बात दीक्षार्थी बहनोंके सम्मुख रख दी और दीक्षा लेनेके पूर्व इस बात पर गम्भीरता पूर्वक विचार कर लेनेको कहा। तीनों ही बहनों ने इस बात पर विचार कर जवाब दिया— "अगर हममें से किसीका भी वियोग हुआ तो शेष सलेखना कर शरीर विसर्जन करनेके लिये प्रस्तुत हैं।" आचार्य महाराजको

उनके दैनिक पत्रको पढ़ने में ही मिलता था। अब उनकी पुस्तकोंकी भी जोन
पर रही। जापानियोंके वीरोचित कार्योंसे महाराज प्रसन्न हुए। [illegible]
[illegible] हैं। इन कार्योंमें भाग लेने गुजराती, मराठी और कन्नड़ी थे।

इस तरह उन्होंने संघमें कमजोरियोंको जरा-सा भी स्थान न पाने देते हुए और शिथि-लताको बिलकुल दूर करते हुए सत्याग्रह [illegible] और [illegible] सिद्धांतके साथ अपने कार्योंको सम्पन्न करते जा रहे थे। [illegible] हौसलेकी पुष्ट एक [illegible] पुस्तकोंका परिचय देते हुए [illegible] के दिनों-दिन उद्दीप्त करते जा रहे थे। [illegible] और उनका [illegible] भी [illegible] था। वे तो केवल यह चाहते थे कि [illegible] कहते हैं [illegible] वे [illegible] हों [illegible], दर्शन, [illegible] और [illegible]

[illegible]

उन्हें स्थिरवास करनेकी जरूरत नहीं हुई। उनका उपयोग बड़ा तीव्र था। उनकी चाल वृद्धावस्थामें भी तेज थी। वे बड़ा परिश्रम किया करते थे यहाँ तक कि रोज स्वयं गोचरी पधारा करते और शिष्योंको लिख-लिख कर स्वयं 'आवश्यक सूत्र' का अर्थ बताया करते। उस समय तक वे धार्मिक चर्चामें विशेष रस लेते थे।

श्रावण सुदी १५ के बाद से स्वामीजीको साधारण दस्तकी शिकायत रहने लगी। दवा-सेवन से कोई लाभ नहीं हुआ। पर्युषण पर्व के दिन आए। बीमारी की हालतमें भी वे [illegible] सबह, [illegible] और रात्रिमें धार्मिक उपदेश और व्याख्यान दिया करते [illegible] और [illegible] भी बाहर जाना जारी रखा। बीमारी कोई [illegible]

[illegible]

१२—जब एक पुरुषके अंगमें भगवान् इस प्रकार सर्वांग—शीलिको धारा लिगन। उसे जो मिलता है, उन्हें बराबर बनाना करना।

१३—कोई शत्रु देशसेवक बन मूँछ बेचे और प्रायश्चित्त न दे तो उसे मार्गसे दूर-बहिष्कृत कर देना।" *

* स्वामीजीके उपदेश उपदेश, कई निष्पक्ष बन्धुओं का कहना है कि नगर-स्वराज्य का सत्य धोखा है। स्वामीजीके उपदेश केन्द्र में से नं० २ ३ और ९ को ही उद्धृत कर उन पर टिप्पणी करते हुए 'ओम्नल नवयुवक' के [illegible] मैं लिखे हैं इसी सम्मिक पत्रके ९ वें वर्षके ८ वें अङ्कमें लिखा है

[illegible]

[illegible]। मेरे हृदय में आनन्द है। [illegible] मुझे [illegible] हैं। [illegible] है। [illegible] है। [illegible] और [illegible] के [illegible] है। [illegible] मेरे [illegible] कोई [illegible] नहीं [illegible]।" [illegible] मेरे [illegible] है कि

[illegible] नहीं है।" [illegible] थे। [illegible] के [illegible] नहीं [illegible]। [illegible] कोई [illegible] नहीं [illegible] थे। [illegible] कोई [illegible] नहीं है। [illegible] है। [illegible] है। [illegible] है, [illegible] है [illegible] और [illegible] है। [illegible] नहीं [illegible] नहीं [illegible] के [illegible] है। [illegible] के [illegible] हैं। [illegible] है, [illegible] है।

अमोलक उपदेश दे सके ।

इस उपदेशके बाद स्वामीजीने ऋषि रायचन्दजी को सम्बोधित कर कहा— "ब्रह्मचारी ! तुम बुद्धिमान बालक हो, मोह मत करना ।" ऋषिने जवाब दिया: "आप तो अपने मनुष्य जन्मको सार्थक कर रहे हैं, फिर मैं मोह क्यों करने लगा ?"

ऋषि भारीमालजी पासमें ही बैठे हुए थे । वे स्वामीजी से बोले : "आपके पास रहनेसे मनमें हमेशा हिम्मत रहती थी । अब विरहके दिन आ रहे हैं । यह सहन करना कितना कठिन है—यह भगवान ही जानते हैं ।" स्वामीजी बोले: "तुम निर्मल चित्तसे निर्दोष संयमका पालन कर मनुष्य-भवको सार्थक कर, देव बनोगे ।"

—आत्म-निरीक्षण और आत्म-शोधन—

इसके बाद में स्वामीजीने तीव्र आत्म-आलोचना की तथा जान-अजानमें कोई पाप हुआ हो तो उसके लिये "मिच्छा मि दुक्कडं" किया । चन्द्रभाणजी, तिलोकचन्दजी आदि जो गण बाहर हो गये थे, उनके नाम ले-लेकर 'क्षमत-क्षमापना' किया । कहनेका तात्पर्य यह है कि उन्होंने निर्मल चित्त से तलस्पर्शी आत्म-निरीक्षण कर पाप परिहार द्वारा जीवन शुद्धि की । स्वामीजी की इस आत्म-आलोचना का सार श्रीमद् जयाचार्य ने "भिक्षु जश रसायन" नामक ग्रंथमें दिया है । इसके पढ़नेसे परम शान्ति और स्वर्गीय आनन्द मिलता है । इस आलोचना के सम्बन्ध में उपरोक्त आचार्य लिखते हैं "ऐसी आलोचना के कान में पड़ने से ही अत्यन्त वैराग्य उत्पन्न होता है और जो ऐसी आलोचना करता है, उसका तो कहना ही क्या ! उनको धन्य है ।"

—अनशन —

यह चौथ की बात है । भाद्र शुक्ला पंचमी—'संवत्सरी' के दिन स्वामीजी ने चौविहार उपवास किया । दिन-दिनको बड़े आनन्द तल्लीन हुए, परन्तु

—आजीवन आहार-परित्याग—

[illegible]

[illegible]

[illegible]

"स्वामीजीके इस सन्थारेमें वे भी उनके चरणोंमें आकर झुक गये, जिन्होंने पहले नमस्कार करना तो दूर रहा, कभी उन्हें सद्भावनासे देखा तक न था।"

स्वामीजीने बड़ी-बड़ोंसे बाजी लगा दी। 'सन्थारा' पचखकर बड़े भारी मनोबल का परिचय दिया। धन्य है स्वामीजी की धीरता! धन्य है उनका निर्मल ध्यान!! धन्य है उनकी शूर वीरता!!! और धन्य है उनकी मेरुके समान दृढ़ता!!!!

झुंड-के-झुंड लोग आकर परम हर्षके साथ स्वामीजीके दर्शन कर 'क्षमा-क्षमापना' करने लगे। लोगोंने नाना प्रकारके पचक्खाण-त्याग किये। किसीने स्वामीजीका 'सन्थारा' पूरा न हो तब तक के लिये कच्चा जल छोड़ा, किसीने ब्रह्मचर्य का नियम लिया, किसीने अग्नि सिलगाने का त्याग किया, किसीने हरी खाने का, किसीने रात्रि भोजनका। इस तरह लोग धर्म-ध्यानकी ओर चित्त देकर स्वामीजीके प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलियाँ चढ़ाने लगे।

'सन्थारे' के बाद सन्ध्या समय स्वामीजीने 'प्रतिक्रमण' किया और बादमें रात्रिमें ऋषि भारीमालजीसे बोले: "व्याख्यान दो।" एक ओर स्वामीजी का सन्थारा और दूसरी ओर व्याख्यान देनेकी आज्ञा। ऐसी परिस्थितिमें व्याख्यान देना बहुत बड़े धैर्यको समेटना था। यह कोई सहज बात न थी। ऋषि भारीमालजी बोले: "स्वामीनाथ! आपके 'सन्थारे' में हमारे व्याख्यानकी क्या विशेषता?" स्वामीजी बोले: "कोई साधी 'सन्थारा' करती है तो उसके पास जाकर धर्मोपदेश किया जाता है, फिर हमारे 'सथारे' में धर्मोपदेश क्यों नहीं देते!" गुरुने शिष्यसे धर्मोपदेश सुनना चाहा और उसके लिये कितना आग्रह दिखाया! जब शारीर-शक्ति क्षीण होने लगती है तो आत्मार्थी पुरुष दूसरोंके सहारेसे अपनेको चेतन रखनेकी चेष्टा करता है। स्वामीजी अपने 'सथारे'में अपने शिष्यसे धर्मोपदेश सुनकर धर्म-ध्यानमें अपनेको लीन कर लेना चाहते थे। विशेष आग्रहके कारण भारीमालजीको व्याख्यान देना पड़ा। स्वामीजी ने उसे बड़े ध्यानसे मनोयोग पूर्वक सुना।

१०	मारवाड़ी	७	१८११, २२, २९, ३९, ४२, ५१, ६०

मारवाड़, मेवाड़, ढूंढाड़ और हाड़ौती ये चार देश ही स्वामीजी के धर्म प्रचार क्षेत्र रहे। स्वामीजी एकबार थली (बीकानेर) भी पधारे थे। इस तरह [illegible] देश को भी उन्होंने अपने चरण-कमलों से पवित्र किया। [illegible] प्रदेशों [illegible] स्वामीजी के समय में नहीं हुआ था। कच्छ देश में धर्म-प्रचार का [illegible] टीकम डोसी के द्वारा हुआ था, जिसने स्वामीजी के दो बार दर्शन किए थे।

—स्वामीजी की कृतियाँ—

[illegible] और [illegible] की जनता में [illegible] के लिए स्वामीजी [illegible] अनेक महत्त्वपूर्ण रचनाएं की हैं। [illegible] जैन दर्शन [illegible] जैन धर्म के [illegible] में वे [illegible] —कृतिपूर्ण [illegible] [illegible] [illegible] दर्शन [illegible] का परिचय

[illegible]	[illegible]	[illegible] है
[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible] की [illegible]	[illegible]	१६०
[illegible]	[illegible]	६१
[illegible] की [illegible]	[illegible]	३३
[illegible] की [illegible]	[illegible]	१६३

लगते हैं जिन्होंने स्वामीजी के संदेश को एक कोने से दूसरे कोने तक पहुंचाया। एक बहुश्रुत तपस्वी, एक निस्पृह योगी, एक वैरागी सन्यासी, एक ज्ञानी मुनि और पुरुषार्थी साधकों के रूप में उनके दर्शन होते हैं।

चतुर्थ आचार्य जयाचार्य के आप विद्यागुरु रहे। उनके निर्माण का बहुत श्रेय आप ही को था। श्रीमद् जयाचार्य ने "हेम नवरसो" में आपके जीवन चरित्र पर बड़ा सुन्दर प्रकाश डाला, अपनी आन्तरिक कृतज्ञता प्रकट की है। आपने कितने साधु संतों को दीक्षित किया, कितनी दीक्षाएं दीं और कितने लोगों को श्रावक बना उन्हें धर्म का प्रकाश दिया—आदि बातों को जब सोचें तो वास्तव में आप को स्वामीजी के मार्ग का अग्रपुरुष कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं। श्रीमद् जयाचार्य कहते हैं :

"भरतक्षेत्र पंचम काल में हो, हेम सरीखा सन्त ।
चौथे आरे बिच विरला होता हो, साध महा गुणवन्त ॥"

आपका स्वर्गवास संवत् १९०४ के वर्ष में जेठ सुदी २ के सुबह सिरियारी में हुआ। आपने साधु जीवन में ४१ वर्ष तक विहार किया।

[१९] मुनि उदयराजजी : आप जाति के चपलोत थे और केलवा के निवासी थे। आप बड़े ही तपस्वी सन्त निकले। आपकी दीक्षा पाली में १८५५ की साल में स्वामीजी के हाथ से हुई थी। आपने बड़े ही उत्कृष्ट तप आरम्भ किया। दिन-दिन बढ़ते वैराग्य से उसे ४२ ओली तक बढ़ा दिया। छठ-छठ आदि और भी अनेक तप आपने किये। आपने ८८१ आयम्बिल किये। आप आचार्य भारमलजी के वारे में सं० १८६० में संथारा कर पेटलावद में स्वर्ग सिधारे।

[२०] मुनि रायचन्दजी : आपकी दीक्षा सं० १८५७ में रावलियां ग्राम में हुई थी। आप जाति के बम्ब थे। आपके पिताजी का नाम चतरोजी बम्ब था। आपने दीक्षा ली उस समय आपकी अवस्था लगभग ११ वर्ष की थी। आपका बाल-वेश रूपये के ठौर पर निपजा था। आपके साथ आपकी माता कुशलां

[२९] सती सुगर्णजी: आपका गाँव राजलियां था। आप मनु गोमतीजी के
शुल्य और सूरि रामचन्द्रजी की भक्त थीं।

[३०] सती कस्तूरांजी: आप हस्तुजी की बहिन थी। आपने भी पति और पुत्र
छोड़कर दीक्षा ली। आपने १८७७ की साल में उज्जैन में संथारा किया।

[३१] सती जैतांजी: आपने रतलाम में दीक्षा ली। आप बड़ी ही वैराग्यवान
सती थी। आपने पति को छोड़ कर दीक्षा ली थी।

[३२] सती नौरांजी: आपका गाँव गिरिलारी था। आप ने भी पति छो
दीक्षा ली। आपने १८७२ साल में संथारा कर जन्म सार्थक किया।

उपरोक्त पाँचों सतियों ने अर्थात हस्तुजी, कुशलांजी, कस्तूरांजी, जैतांजी
नौरांजी—सबने अपने अपने पति छोड़ एक साथ दीक्षा ली थी। पाँचों ही
वैराग्यवान थी।

[३३] सती कुशलांजी: आपने १८७७ में संथारा किया और मार्गशु
कार्तिक मास में परलोकगमन किया।

[३४] सती नन्दांजी: आप एक धनवान घराने की थीं। आपकी प्रकृ
निर्मल और सरल थी। आपने उज्जैन में संथारा किया।

[३५] विनांजी ने ३२ दिन की तपस्या की और अन्तमें आपको
क संथारा आया। आप सं० १८८३ में स्वर्गलोक सिधारीं।

[३६] सती गंगांजी: आपकी दीक्षा सं० १८५९ में हुई थी।
मलूकचन्दजी, भैरूजी और छोगमलजी की संसार पक्षकी बहिन थीं।

(३७) सती अवेदांजी: आपका गाँव सेरवा था। आप भी

सती थीं।

(३८) सती मांझीजी

(३९) सती नाजांजी

स्वामीजी के पास कुल ५६ महिलाओं ने दीक्षा ली, जिनमें
हो गईं और ३९ साध्वियाँ मन में शुद्ध रीति से रहीं।

भगवान ने कहा है— [illegible]

स्वामीजी ने भी कहा है " [illegible]

नहीं।" स्वामीजी ने [illegible]

गया है। इस [illegible]

और अपरिग्रह—ये पाँच [illegible] हैं [illegible]

जीतना और [illegible]

और [illegible] के [illegible]

[illegible]

[illegible]

"भगवान का धर्म उनकी आज्ञा में है। आज्ञा के बाहर जो धर्म बतलाते हैं, वे मूढ़ हैं। उनमें न विवेक है, न शुद्ध बुद्धि। वे रूढ़ि में पड़े डूबे जा रहे हैं।

जिनराज का धर्म बड़ा उज्ज्वल है। वह आज्ञा से प्रमाणित है।"

साधु अपने मन में सोचा करे — 'भगवान की आज्ञा से प्रमाणित धर्म ही मेरा धर्म है। आज्ञा रहित कर्त्तव्य करना तो दूर रहा उसे अच्छा कहना भी मुझे शोभा नहीं देता'।

मैं कह-कह कर कितना कह सकता हूं? आज्ञा के बाहर जरा भी धर्म नहीं। जो आज्ञा के बाहर धर्म कहते हैं उनकी श्रद्धा धूल की तरह निस्सार है।

स्वामीजी ने जिन-धर्म को उज्ज्वल धर्म कहकर उसे कितना उच्च स्थान दिया है। जिन आज्ञा को ही जैनधर्म की कसौटी बतलाया है। जिन-वाणी की आराधना ही स्वामीजी के जीवन का सबसे बड़ा लक्ष्य था। जिन-आज्ञा रहित कार्य को [illegible] में अधर्म समझते थे :

> केई जिण आज्ञा बारे धर्म कहे
>
> जिण आज्ञा मांहे कहे पाप हो। स्वा०
>
> ते डूबे विध मूढ़ ते बापड़ा
>
> कूड़ा कर-कर अज्ञानी विलाप हो। स्वा०

[illegible]

[illegible]

> [illegible]

"केवली भाख्यो धर्म मंगलीक छै
ओहिज उत्तम जाणरे—
शरणो पिण ल्यो इण धर्म रो
तिणमें भी जिन-आज्ञा प्रमाण रे।"

"केवली भगवान का कहा हुआ धर्म ही मंगल है। यही उत्तम है। इसी धर्म की शरण लो। जैनधर्म जिन-आज्ञासे प्रमाणित है।"

स्वामीजी के जीवन की विरासत इस अनुभव वाणी में संचित है। यही उनके जीवनकी अमोलक देन है।

* *
*

: २ :

एक अमाप्य महापुरुष

समुद्र अथाह होता है परन्तु एक महापुरुष उससे भी अथाह। समुद्र के गर्भ का अन्दाजा वैज्ञानिक युगमें किसी सीमा तक भी हो सकता है, परन्तु एक महापुरुष के समूचे व्यक्तित्व का माप-तौल असंभव रहा है और रहेगा भी। जैसे हम आकाश को नहीं माप सकते, वैसे ही हम एक महापुरुष के अनन्त व्यक्तित्व की सर्वग्राही अवधारणा नहीं कर सकते। वह अनन्तमुखी प्रतिभावान् एक अशेष पुरुष होता है। वह एक ससीम शरीर में असीम व्यक्ति होता है। हम उसके शरीर की सीमा और चौड़ाई माप सकते हैं, परन्तु उसके महान आत्मा की नहीं। जैसे गागर में सागर नहीं समाता, वैसे ही वह शब्दों में नहीं समाता, प्रत्युत बाहर ही [illegible] जाता है। वह अमाप्य पुरुष हुआ है। उसके लिए 'अपारावार' शब्द की उपमा ही ठीक बैठती है।

जब हम स्वामीजी के व्यक्तित्व पर विचार करते हैं, [illegible] है [illegible] पुरुष [illegible] है। स्वामीजी की परिभाषा देना, उनकी व्याख्या करना — [illegible] शब्दों में उनके व्यक्तित्व को नाप-तोलकर सामने रखना एक हिमालय को [illegible] काम है। श्रीमद् जयाचार्य जैसे विचक्षण आचार्य, [illegible] [illegible] वर्षों में एक अपूर्व प्रामाणिक जीवनी देकर भी जब अनुभव करते हैं कि बहुत रह गया— बहुत बाकी ही है शेष, तब कौन दावा करेगा कि वह [illegible] सकता।

निश्चय ही, स्वामीजी अपने समय के महापुरुष थे और एक असाधारण महापुरुष। जो चैतन्य का भार हो—वह पुरुष। जिसमें चैतन्य का विराट दर्शन हो वह महापुरुष। स्वामीजी—चैतन्य के—विवेक ज्ञान और दर्शन के—एक [illegible]

दिन विहार करते समय भिक्षा ग्रहण कर लेते हैं। यह प्रकार नित्य पिण्ड है। गोचरी—भिक्षा के नियमों को इस तरह भंग करने से आचार कहां रहता है? बलतादिक के घर से गर्म जल भी रोज-रोज लेते हैं। जिस पाड़े—मुहल्ले में पहले दिन एक दो सिघाड़े गोचरी कर जाते हैं दूसरे दिन उसी संघ के अन्य सिघाड़े उस पाड़े में गोचरी करते हैं। एक ही टोले के साधु-साध्वियों का इस तरह गोचरी करना प्रत्यक्ष नित्य पिण्ड है और अनाचार है। अनाचारी को साधु कैसे माना जाय!

—औद्देशिक स्थानक—

कई वेषधारी साधु, साधुओं के निमित्त बनाए हुए स्थानकों में उतरते हैं। ऐसा करने वाले भगवान की अवज्ञा करते हैं। भगवान ने कहा है कि साधु घर न बनावे और न दूसरों से बनवावे। स्थूल और सूक्ष्म, हलते-चलते और स्थिर जीवों की हिंसा होने से संयमी मुनि को घर बनवाने की क्रिया छोड़ देनी चाहिए—ऐसा भगवान ने (उत्तराध्ययन सू० अ० ३५ गा० ८,९ में) कहा है। भगवान की ऐसी आज्ञा होने पर भी ये जैन साधु मठधीशों की तरह औद्देशिक स्थानकों में रहते हैं और बुरा यह है कि अपने को सच्चा अहिंसाव्रत धारी साधु कहने में जरा भी संकोच नहीं करते। जो साधु औद्देशिक स्थानक में रहता है वह अहिंसा महाव्रत से पतित होता है। भगवती सूत्र में उसे दया रहित कहा गया है। वह मरकर अनन्त जन्म मरण करता है।१

अपने निमित्त बनाए गए स्थानक या उपाश्रये में रह कर भी जो साधु यह कहता है कि उसे सर्व सावद्य कार्यों का त्याग है, वह दूसरे महाव्रत से गिरता है। ऐसा कहना कि यह मेरे लिए नहीं बनाया गया, कपट पूर्ण झूठ के सिवा और कुछ नहीं।२

१—सा० आ० २१९ ; २—सा० आ० २१२ ;

—विहार दोष—

संघ में और साध्वियों के होने पर भी तथा बिना किसी कारण के केवल दो ही साध्वियों का साथ रहना प्रत्यक्ष दोष है। केवल दो ही साध्वियों का साथ रहना व्यवहार सूत्र के पाँचवें उद्देशक में वर्जित है।

बिना कारण अकेले साध्वी का गोचरी जाना अथवा शौचादि के लिए जाना प्रभु-आज्ञा के विपरीत है। तथा साध्वी को अकेले रहना वृहत् कल्प, उद्देश ५ में वर्जित है। इसी तरह की और भी बहुत सी बातें वहाँ हैं।

—चश्मा लगाना—

चश्मा रखना शास्त्रों में मना है। परन्तु आज के साधु चश्मा रखने लगे हैं और उसमें थोड़ा ही दोष समझते हैं। जो ऐसा समझते हैं, उन्होंने पाँचवें परिग्रह विरमण व्रत को भंग कर दिया है। वे जिन-भगवान की आज्ञा के चोर—उसे लोप करने वाले हैं।१

—निमन्त्रित ग्रहण—

गृहस्थ घर से आकर आहार के लिये साधु को बुला कर ले जाय और इस तरह साधु जाकर ग्रहण करे तो उसमें चारित्र किस तरह कहा जाय ?२

सामने लाया हुआ लेना अथवा बुलाने आने पर जाकर लेना—ये दोनों ही भारी दोष हैं। वीर भगवान के अनुयायी इन दोनों ही दोषों से बचते हैं। जो इन दोषों का सेवन करता है, वह सुआचारी साधु नहीं।३

—सचित्त ग्रहण—

धोवन में वनस्पति और भीगे हुए धान के कण रहते हैं। ऐसे सचित्त धोवन को ग्रहण करने में जो संकोच नहीं करते, वे परभव से नहीं डरते। उन्हें साधु कैसे कहा जाय ?४

ऐसा अन्न, पानी भोगने वाले, सूत्र के अनुसार चोर की श्रेणी में आते हैं।५

१—आ० ढा० ६।१३; २—आ० ढा० ६।१५; ३—आ० ढा० ६।१६
४—आ० ढा० ६।१७; ५—आ० ढा० ६।१९

— उपधि संरक्षण —

गृहस्थ को अपनी उपधि—वस्तुएं सौंपना यह साधु का आचार नहीं है। ऐसा करने वाले साधु जिन-प्रवचन का पालन नहीं करते और मुक्ति-मार्ग से भिन्न मार्ग के पकड़े हुए हैं।१

जो गृहस्थ से अपनी वस्तुओं की देखभाल करवा कर उसे सेवक बनाता है उसे साधु कैसे माना जाय? ऐसा साधु अपने समस्त व्रतों को चकनाचूर करता है और मत्सर साधु-भाव से दूर होता है।२ जो अपनी वस्तुओं की सार सम्हाल का भार गृहस्थ को दे जाते हैं वे भगवान के वचनों को कुचलते हैं।३

गृहस्थ सौंपी हुई वस्तुओं को समय पड़ने पर एक जगह से दूसरी जगह ले जाता है। इस तरह गृहस्थ से जो हिंसा होती है उसका भागी वह साधु भी होता है। गृहस्थ से बोझ उठवाने वाले साधु को निशीथ सूत्र के बारहवें उद्देश में चौमासी प्रायश्चित्त का दंड कहा है।४

जो अपनी उपधि को एक दिन के लिये भी बिना प्रयोजन रखता है उसे निशीथ सूत्र के [illegible] गृहस्थ के घर धरी हुई उपधि [illegible]

[illegible]

[illegible]

(३) अनुभाग बन्ध—बंधे हुए कर्मों के रसविपाक फल [illegible]
तीव्रता मन्दता आदि की दृष्टि से। और

(४) प्रदेश बन्ध—बन्धे हुए कर्मों के दलों [illegible] की दृष्टि से [illegible]

यह बन्ध या तो शुभ कर्मों का होता है या अशुभ कर्मों का। बन्ध अ[illegible] अवस्था में नहीं आता, तब तक जीव के शुभ अशुभ फल भी नहीं होते। [illegible] में आने तक बन्ध केवल सत्ता रूप होता है। बन्ध के उदय अवस्था में आने पर [illegible] शुभ फल होते हैं तो पुण्य का बन्ध माना जाता है और जब विविध [illegible] दुःख होते हैं तो पाप का बन्ध माना जाता है। जीव को एक अनुभव आते हैं तो [illegible] उसके अनुसार बल रूप होता। इस अनुभव से निकलते हुए बल रूप पुण्य पा[illegible] होते।

६—मोक्ष सब कर्मों से छुटकारा पाने को मोक्ष [illegible] कहते हैं [illegible] —

[illegible]

षट्‌द्रव्य

जैन दर्शन संसार को वास्तविक मानता है। संसार कोई काल्पनिक वस्तु नहीं, पर वास्तव में अपना अस्तित्व रखती है। जैन दर्शन के अनुसार यह लोक षट् द्रव्यात्मक है। इन द्रव्यों के नाम (१) जीवास्तिकाय, (२) धर्मास्तिकाय, (३) अधर्मास्तिकाय, (४) आकाशास्तिकाय, (५) काल और (६) पुद्‌गलास्तिकाय हैं। स्वामीजी ने इन ६ द्रव्यों का बड़ा ही अद्‌भुत और हृदयग्राही विवेचन किया है। पाठकों की जानकारी के लिए हम उसका सार यहाँ देते हैं:—

"जीव चेतन पदार्थ है। उसके असंख्यात प्रदेश हैं। इन प्रदेशों में कभी घट-बढ़ नहीं होती। इसी से जीव को द्रव्य कहा है। द्रव्य तीनों काल में शाश्वत होता है। द्रव्य कभी विलय नहीं होता। वह सदा ज्यों-का-त्यों रहता है। वह छेदने पर नहीं छिदता, भेदने पर नहीं भिदता, जलाने पर नहीं जलता, काटने पर नहीं कटता, गलाने पर नहीं गलता, बाँटने पर नहीं बंटता, और पीसने पर नहीं पिसता। जीव असंख्यात प्रदेशों का अखण्ड पिण्ड है और सदा काल ऐसा ही रहता है। जीव कभी अजीव नहीं होता।

"धर्म, अधर्म आकाश काल और पुद्‌गल ये पाँचों ही अजीव हैं। पहले चारों ही द्रव्य अरूपी हैं। उन में वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श नहीं हैं। केवल पुद्‌गल रूपी है और इस में वर्णादि सर्व पाए जाते हैं। ये पाँचों ही द्रव्य साथ रहते हैं, परन्तु अपना अस्तित्व नहीं खोते। वे अपने-अपने गुण को लिए हुए रहते हैं—उन्हें कोई एक दूसरे में मिला नहीं सकता। धर्म द्रव्य अस्तिकाय है। अस्ति अर्थात् जो वस्तु सत् हो—अस्तित्व वाली हो। जिन भगवान ने उसे काय इसलिए कहा है कि वह असंख्यात् प्रदेशी पिण्ड है। धर्म और आकाश भी क्रमशः असंख्यात् अनन्त प्रदेशी अखण्ड सत् वस्तु होने से अस्तिकाय हैं। धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय लोक प्रमाण चौड़े हैं। आकाशास्तिकाय लोकालोक प्रमाण लम्बी और चौड़ी है। भगवान ने धर्म, अधर्म और आकाश—तीनों ही अस्तिकाय को

है, उसे कोई [illegible] वह [illegible] के स्वभाव से ही तैरता है उसी [illegible] ([illegible]) [illegible] स्वर्ग को जाता है और [illegible] में [illegible] "

इसी तरह [illegible] वह बना किस प्रकार हो, स्वामीजी [illegible] को पानी में डालने से वह डूब जाता [illegible] कटोरी बना ली जाए और पानी पर [illegible] कटोरी में पैसे को रखने से वह भी [illegible] —इन्द्रिय दमन और क्रोधादि के [illegible] । कर्म भार के दूर होने से [illegible] और अपने साथ दूसरों का निस्तार करने में भी [illegible]

स्वामीजी की बुद्धि कितनी [illegible] और स्वच्छ था—इसका आभास उपरोक्त प्रसंग से [illegible] विषय को उन्होंने कितने सरल ढंग से समझा दिया ।

पद मन से ठीक है क्योंकि इसमें देव और धर्म की प्राप्ति इससे गुरु के पद [illegible] अत्यन्त दुर्लभ है। [illegible] के तीन [illegible] होते हैं—एक मन में और एक [illegible] दोनों [illegible]। [illegible] के दोनों [illegible] [illegible] सकते हैं। [illegible] स्थिति में [illegible] होने [illegible]—[illegible] में न होने से [illegible] दोनों [illegible] है और [illegible]—[illegible] है। [illegible]—[illegible] में होता है तो दोनों [illegible] [illegible]—[illegible] रहते हैं। देव, गुरु और धर्म में [illegible] होने से [illegible] [illegible]—[illegible] और [illegible] होने से ही [illegible] और [illegible] है। [illegible] और [illegible]—[illegible] [illegible]

[illegible]

स्वयं भोगता है। दुःख चोरासी क्यों हैं। जो उनको बन्धन मानते हैं वे मूढ़ हैं और कर्म धर्म को नहीं पहचानते। दुःख से जो-जो वस्तु मिलती है उसके त्याग से निर्जरा होती है। जो दुःख को शुद्ध होकर भोगता है उसके पिछले सिंचित कर्म बंध कटते हैं।"

भौतिक-उन्नति के चरम शिखर पर पहुँची हुई दुनिया आज भोगों में मुग्ध होकर किस तरह अपनी तबाही कर रही है यह सब की आँखों के सामने है। ऐश्वर्य के लोभ त्याग और सन्तुष्टि है, भोग और लिप्सा नहीं—यह बात ज्ञानीओं ने बड़े गम्भीर रूप से बतलाई है।"

सकाम अकाम निर्जरा

आत्म प्रदेशों से कर्मों के आंशिक रूप से दूर होने को निर्जरा कहते हैं—यह हम पहले बता आए हैं। आचार्यों ने सकाम और अकाम निर्जरा का भेद कुछ [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] प्रता-
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] आम पर
[illegible]
[illegible]
[illegible] है
[illegible]
[illegible]

[illegible]

[illegible] है

[illegible]

[illegible]

(पौषध) मत करने के लिए मकान दिया। इसमें उसको क्या हुआ?" स्वामीजी ने उत्तर दिया "घर मालिक ने यह जो कहा कि मेरे घर पौषध कीजिए सो उसमें धर्म हुआ।" प्रश्नकर्त्ताने फिर पूछा —"मकान दिया उसमें क्या हुआ?" स्वामीजी बोले: "मकान क्या सूना—सदा के लिए दे दिया? मकान परिग्रह है। परिग्रह सेवनमें धर्म नहीं है और न सेवन कराने में धर्म है। मकान में सामायक प्रतिक्रमण करने दिया उसमें धर्म हुआ।"

पौषध और वस्त्र

किसीने कहा: "पौषध व्रत में थोड़े वस्त्र रखने वाले को थोड़ा और अधिक वस्त्र रखने वाले को अधिक अव्रत लगता है। यदि ऐसा नहीं तो प्रतिलेखन न करने वाले को प्रायश्चित क्यों आता?" स्वामीजी ने समाधान करते हुए कहा वस्त्र रखना कोई अव्रत नहीं है। वस्त्र नहीं रखने से पौषध व्रत और अच्छा होता है; लेकिन जिन वस्त्रों के जो परिग्रह—कष्ट होता है वह सहने की शक्ति न होने से वस्त्र रखना पड़ता है और बिना प्रतिलेखन किए उस काम में लाने का त्याग है इसलिए प्रतिलेखन करना पड़ता है। यदि वह प्रतिलेखन किए बिना ही वस्त्र काममें लाता है तो उसके त्याग का भंग होता है और इसलिए उसे प्रायश्चित आता है। जैसे किसी को बिना छाना पानी पीने का त्याग हो; अब जब वह पानी पीता है तो छान कर पानी पीता है। यदि नहीं छानता तो पानी नहीं पी सकता। पानी पीए बिना रहा नहीं जाता इसलिए पानी छानना पड़ता है। परन्तु वह पानी दया के लिए या त्याग निभाने के लिए नहीं छानता, उसका छानना सिर्फ व्रत पुष्टि के लिए ही होता है। इसी प्रकार वस्त्र रख सकने के लिए ही वह प्रतिलेखन करता है। बिना प्रतिलेखन के वह काम ला ही नहीं सकता।

रक्षा किसकी?

किसीने कहा: "भगवान् अपने स्वयं शरीर का प्रतिलेखन कर काम करते थे और बिना प्रतिलेखन कर काम करने से दया होती है।" स्वामीजी ने उसे समझाने के लिए प्रश्न किया: "कोई चोर नगर आदि का नाश करता है और वह शरीर

को नहीं खोता, वही सच्चा ज्ञानी है।" स्वामीजी जीवन के प्रतिपल शुभ समभाव की रक्षा करते थे। उनकी अन्तर-भावना धर्म-ध्यान से ओत-प्रोत रहती और हर समय वे अवस्था के एकान्त हित की बात को सामने रख कर ही कदम उठाते। वे एक आध्यात्मिक योगी थे। आत्म-साधना उनके जीवन का महा योग था। उनके विचारों और दृष्टान्तों में आध्यात्मिकता कूट-कूट कर भरी हुई है। हम उनके कुछ विचार यहाँ उपस्थित करते हैं जिससे पाठकों को उनके जीवन की इस विशेषता का अंदाजा हो सके।

मृत्यु और मोह

रोग, वियोग, मृत्यु आदि कष्ट पड़ने पर अज्ञानी लोग रोना-पीटना करने लगते हैं। स्वामीजी ने एक बार कहा था : "ऐसे अवसरों पर रोना-पीटना नहीं चाहिए। अपनी आत्मा को मजबूत बना लेना चाहिए। धैर्य और समभाव से सहन करना चाहिए। फिर [illegible] कर्ज होने से उतारने की इच्छा व सामर्थ्य न होने पर भी जैसे पाने वाला जबरदस्ती अपने रुपये वसूल कर लेता है उसी तरह संचित कर्म उदय में आकर फल दिए बिना नहीं रह सकते। जब साहूकार कर्ज वसूल करता है तो मूर्ख रोने लगता है पर चतुर विचार करता है: 'जो चलो अच्छा ही हुआ। कुछ बोझा तो हलका हुआ। रुपये तो लेन-देन देने ही पड़ते। आज ही चुक गए [illegible] नहीं रहा।' इसी तरह से कष्ट के समय सोचना चाहिए— 'यह कर्म-कर्ज चुक रहा है। आज नहीं तो कल [illegible] कर्मों का फल ही भोगना हो पड़ता। अच्छा हुआ जो कर्ज ही समय में चुक गए। कुछ तो अच्छा पूरी हुई।'"

स्वामीजी के उपरोक्त उपदेश में उनकी आध्यात्मिकता फूट पड़ती है। [illegible] विद्ध मनुष्य के लिए कितना सुन्दर सांत्वना [illegible] इसमें है।

इसी तरह स्वामीजी ने एक बार कहा था : "जब मनुष्य मिलने के कुछ दिन बाद ही अल्पावस्था में चल बसे। यह सुन कर आँखों में [illegible] लोग कहने लगे : "बेचारी बाल वर्ष की लड़की का क्या हाल होगा। इसके दिन कैसे कटेंगे। [illegible] इस तरह चिन्ता का [illegible] देखते हैं उन्हीं के दस

[illegible] नहीं [illegible] स्वामीजी जीवन के प्रतिपल [illegible] को [illegible] करते थे। उनकी [illegible] भावना [illegible] ध्यान में आठ पहर रहती और [illegible] के [illegible] की बात [illegible] सामने [illegible] हो [illegible]। वे एक आध्यात्मिक [illegible] थे [illegible] जीवन का [illegible] था उनके विचारों और [illegible] में [illegible] हुई है। [illegible] कुछ विचार यहाँ [illegible] हैं [illegible] जीवन को [illegible]

मनुष्य और [illegible]

[illegible] है स्वामीजी ने [illegible] [illegible] अपनी [illegible] को [illegible] [illegible] करना चाहिए [illegible] [illegible] [illegible] "[illegible] नहीं" [illegible] [illegible] है [illegible] [illegible] [illegible] चाहिए [illegible] है [illegible] [illegible] में [illegible]। [illegible]

स्वामीजी के [illegible] में उनकी [illegible] है [illegible] मनुष्य के लिए [illegible] में है।

[illegible] स्वामीजी से [illegible] मनुष्य [illegible] में [illegible]। [illegible] में [illegible] [illegible] दिन [illegible]। [illegible] हैं [illegible]

कर रहे हैं। परन्तु वास्तव में वे उसके कामभोग—ऐशोआराम की ही चिंता करते हैं। सभी लोग यही सोचते हैं कि यदि लड़का जीता रहता तो २१४ लड़के लड़कियां होते। लड़की को सुख मिलता। परन्तु क्या यह भी कोई सोचता है कि इन कामभोगों के सेवन से लड़की का क्या हवाल होता ? न कोई यही सोचता है कि मृत लड़के की कामसेवन से क्या गति हुई होगी। संसारी लोगों की सत्य की ओर दृष्टि जानी मुश्किल है। ज्ञानीपुरुष जन्म-मरण का हर्ष शोक नहीं करते। वे केवल परमार्थ की चिंता करते हैं।"

स्वामीजी ने कितना सुन्दर विवेक दिया है। हम मौत देख कर स्वयं विह्वल हो जाते हैं और विधवा को भी उसकी याद दिला-दिला कर उसके जीवन को दुर्वह कर देते हैं। जीवन को धर्मध्यान में लगा देने से वह वियोग-व्यथा कितनी शांत हो सकती है और जीवन-वहन कितना सरल—यह स्वामीजी के उपरोक्त अवतरण से समझना चाहिए।

पांच महाव्रत और उनकी संगति

स्वामीजी कहा करते थे कि हिंसा, झूठ, चोरी, अब्रह्मचर्य और परिग्रह इन पांचों पापों के युगपत् त्याग से ही कोई जैन साधु बन सकता है। ऐसा त्याग भी सर्वथा और यावज्जीवक होना चाहिए। जो एक या अधिक पापों का त्याग करता है परन्तु सब का एक साथ नहीं, अथवा त्याग तो सब का करता है परन्तु सम्पूर्ण रूप से—तीन करण तीन योग से नहीं—वह गृहाचारी है—साधु नहीं। सर्व पापों से एक साथ सम्पूर्ण विरति को ही महाव्रत कहते हैं।

स्वामीजी ने अपने इस सिद्धान्त को गुरु-शिष्य के संवाद रूप में बहुत सुन्दर ढंग से समझाया है :

गुरु : "हिंसा, चोरी, झूठ, अब्रह्मचर्य और परिग्रह इन दुष्कर्मों के आचरण से जीव कर्मों को उपार्जन कर चार गति रूप संसार में भ्रमण करता है।

अहिंसा, अमिथ्या, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पांचों महाव्रतों का निर-

बना डालते। जैसे हम भाषा में बोलते हैं वैसे ही वे सहज स्वभावसे कविता में बोल सकते। ऐसे अनेक उदाहरण हैं, जो उनकी शीघ्र कवित्व शक्ति का प्रदर्शन कराते हैं। हम दो एक उदाहरण यहाँ देते हैं।

एक बार आगरिया गाँव में प्रतापजी कोठारीने आश्चर्य कर पूछा : "आप इतनी जोड़ (पद्य-रचना) कैसे करते हैं ?" स्वामीजीके समीप एक छोटी-सी टोकनी रक्खी हुई थी, जिसके ऊपर का कपड़ा उड़ गया। स्वामीजी ने पद बनाया:

"नान्ही-सी या टोकनी
इणरे मांय पड्यो सपेतो रे
यत्न घणा कर राखज्यो
नहीं तर मांय पड़ेली रेतो रे"

पद कह कर स्वामीजी बोले : "हम इसी प्रकार जोड़—रचना करते हैं।" स्वामीजी ने क्षण मात्र में कितना उपदेशपूर्ण पद बना दिया।

एक और भी ऐसी ही घटना है, जिससे स्वामीजी की आशु कवित्व शक्ति का परिचय मिलेगा। सिरियारी में मुत्सद्दी विजयसिंहजी ने स्वामीजी के दर्शन किए। संसार आदि अनादिके सम्बन्ध में प्रश्न करने पर स्वामीजी ने 'मोर-अण्डा, एरण-हथौड़ा बाप बेटा आदि के दृष्टान्त दे बहुत ही सुन्दर ढंगसे उन्हें समझाया। उत्तर सुन मुत्सद्दीजी बोले : "आपकी बुद्धि बहुत देशों को परोटे(उन पर राज्य करे) ऐसी है।" स्वामीजी ने निम्न लिखित पद जोड़ कर मार्मिक जवाब दिया:

"बुद्धि वाही सराहिए
जो सेवे जिन-धर्म
वा बुद्धि किण कामरी
जो पड़िया बांधे कर्म"

"उस रजबुद्धि से क्या प्रयोजन जिससे सिर्फ कर्मों का ही बन्ध होता है। वही बुद्धि सराहनीय है, जिससे जिन-धर्म सेवित है।" जैन-धर्मके प्रति अगाध प्रेम और कविता की अनुभूति—स्वामीजी की इन दोनों विशेषताओं के दर्शन हम अनार पद में एक ही साथ होते हैं। स्वामीजी की बुद्धि की तीक्ष्णता और अद्भुत कवि और कुशल के तो सभी कायल थे।

स्वामीजीने छोटी-छोटी कृतियोंके साथ-साथ बड़ी-बड़ी कृतियाँ भी दी हैं और उन में उनकी कवित्व शक्ति समान ओज [illegible] है। संगीत पूर्ण ढालों के साथ चुम्बक दोहे और सोरठे चमत्कार सा पैदा करते हैं।

संसार एक द्वन्द्व है। इसमें बड़ी विचित्रता है। ऊपर आकाश है और नीचे पाताल। एक ओर गगन भेदी पर्वत हैं और दूसरी ओर पाताल भेदी समुद्र। ऐसी विरोधी विचित्रता मनुष्य के जीवन में भी है। इस विचित्रता और उसके कारण का बड़ा ही गंभीर और हृदयस्पर्शी वर्णन स्वामीजीने चन्द सोरठों में किया है। हम इन सोरठों को यहाँ देते हैं :

एक नर पंडित प्रवीण रे, एक ने अक्षर ना चढ़े
एक नर मूर्ख दीन रे, भाग बिना भटकत फिरे
एकन रे भरिया भंडार रे, एक अन्न घर में नहीं
एकन रे नहीं [illegible] रे, [illegible]
एकन रे अनुकूल अनेक रे, [illegible] विविध प्रकार ना
एकन रे नहीं एक रे, [illegible] फिरे
एक नर ऊँचे [illegible] रे, [illegible]
एकन रे नहीं [illegible] रे, [illegible] फिरे
एक नर [illegible] रे, [illegible]
एक नर [illegible] रे [illegible]

कवि ने एक निश्चल सत्य को कितने सुन्दर ढंग से बोधगम्य कर दिया है। फूल और फलों का निष्फल होना देखा जाता है पर कल्पी कभी निष्फल नहीं जाती— यही कारण है कि जगत् में इतनी विचित्रता है। प्रत्येक सोरठे में एक ओर हर दर्जे की सम्पन्नता और दूसरी ओर हर दर्जे की सम्पन्नहीनता के उदाहरण फौज के मार्च (March) के समय समतलान्तर से ऊपर उठते और नीचे गिरते दोनों तरह पैरों के हलचल का दृश्य उपस्थित कर देते हैं। कवि की प्रौढ़ कल्पनाशक्ति सुन्दर शब्दों के अलंकारों से विभूषित हो, एक अनूठे वैभव के साथ प्रकट करती है। कवि एक अनोखी भाव तन्मयता में कहता है: "संसार में क्रिया की विचित्रता प्रकट देखी जाती है फिर कर्म की विचित्रता क्यों नहीं होगी! एक स्वर्ग-मार्ग को प्राप्त करता और दूसरा नरक-द्वार [illegible] जाता है फिर क्यों नहीं एक अपना कार्य सिद्ध करेगा और दूसरा अपना काम बिगाड़ेगा! एक मनुष्य नदियों में [illegible] करता है और [illegible] का [illegible] कर [illegible] का परिचय देता है दूसरा मनुष्य [illegible]—[illegible] और [illegible] की सेवा करता है। [illegible] दुःख [illegible] और [illegible] नहीं दूसरा मनुष्य मोक्ष के [illegible] । [illegible]

[illegible]

ब्रह्मचारी बैसे नहीं, मत कर नारि प्रसङ्ग
एकण सिज्या बैसतां, होवे व्रतनो भङ्ग
पावक गले लोह ने, जो रहे पावक सङ्ग
ज्युं एकण सिज्या बैसतां, न रहे व्रत स्युं रङ्ग
नारी रूप नहीं निरखणो, या जिन कही चौथी वाड
दृढ मने ते पालसी, ज्यां सफल कियो अवतार
चित्र लिखित जे पूतली, ते पिण जोवणी नांहि
केवल ज्ञानी इम कह्यो, दसवैकालिक मांहि
भीत परेच टाट आंतरे, तिहां रहता हुवे नर नार
तिहां ब्रह्मचारी ने रेहणो नहीं, ए जिन कही पांचमी वाड
संजोगी पासे रहे, ब्रह्मचारी दिन रात
ते शब्द शब्द सांभल्यां, हुवे व्रत नी घात
छठी वाड में इम कह्यो, चंचल मन मति बिगाड
आगे पेहेले विलसियो, ते नहीं याद करन्द
मन गमता भोग भोगव्या, ते याद कियां गुण नांहि
जद भोग्या भव ने हुवे, पडे अवत हुवे लोग मांहि
नित २ सति सरस आहार ने, बरज्यो सातमी वाड
ते ब्रह्मचारी नित भोगवे, तो व्रत रो हुवे बिगाड
इन्द्रिय सुं पूरण जाने, पुहवी भारी आहार
ते धातु दीपावै अति घणो, तिण स्युं वधे विकार
सदेव सारो खातरो, मीठो भोजन लेह
निरंतर रस गोलवै, ते सजल सुं रत देह

जेहनी रचना बन नहीं ते ल्यावे सरस आहार
मन मोन आसक्त हुवे, ओरे अशुद्ध ताय
आठमी बाड़ में हुम कह्यो, [illegible] न करणी आहार
प्रमाण लोप अधिको करे, तो मन ही हुवे बिगाड़
अति आहार थी दुःख हुवे, गळे [illegible] बल आय
प्रमाद निद्रा आलस हुवे, वळे अनेक रोग होय जाय
अति आहार थी [illegible] [illegible], मनोहर फाटे पेट
[illegible] [illegible] करतो, इसी [illegible] पेट
नवमी बाड़ ब्रह्मचर्य री, विभूषा न करणी अंग
विभूषा शोभा करी, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
शरीर विभूषा जे करे, ते संजोगी [illegible]
ब्रह्मचारी तन न शोभावे, ते [illegible] [illegible] [illegible]
नवमी बाड़ कही ब्रह्मचर्य री, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नहीं, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] हुवे [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] ब्रह्मचर्य री, तो [illegible] न [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] है [illegible] [illegible] [illegible] है—[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible], [illegible] [illegible], [illegible] । [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नहीं, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ?"

[illegible] [illegible] हैं [illegible] [illegible] की [illegible] पर [illegible] है [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नहीं [illegible] [illegible] [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है । [illegible] [illegible] [illegible] नहीं [illegible] [illegible] है [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] के लिए [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible]—[illegible]—[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

'कालरात्रि [illegible] [illegible]' [illegible] ही उत्तम [illegible] है। इसे पढ़ने से ऐसा लगता है [illegible] ज्ञान की अद्भुत छटा, दूसरों का अद्भुत [illegible] अद्भुत [illegible] मनन के [illegible] पड़ जाते हैं। स्वामीजी का '[illegible]' [illegible] है। इसके कुछ नमूने देखिए —

> [illegible]
>
> [illegible]
>
> चारित्र [illegible]
>
> [illegible]
>
> ते [illegible]
>
> [illegible]
>
> चारित्र [illegible]
>
> [illegible]
>
> [illegible]
>
> [illegible]

अर्थात्—'दो आदमी एक [illegible] चारित्र [illegible] होते हैं। इस प्रकार दोनों [illegible] चारित्र का [illegible] गुण में फेर हो सकता है। चारित्र [illegible], मध्यम और [illegible] जीव के चेतन गुण की पर्याय—उसकी अवस्था विशेष है। [illegible] होने से जितना [illegible] जिस गुण प्रकट होता है—चेतन का जितना [illegible] होता है, वही चारित्र है।

"परिणति सारो कर्म कर्ता को मिलता है; जो मिलता है—वह आत्मा का निजगुण—उसका चेतन भाव है। कर्म परगुण आत्मा के लिए अन्य के गुण को नहीं देखता। इसको अच्छी तरह पहिचानो।"

ज्ञानीजी के ये पद कितने चमत्कारिक हैं—यह पाठक स्वयं अनुभव करें। "परगुण रूपी कर्म रूपै नहीं"—यह कितना गूढ और सर्वगौरवगंभीर है। यह एक आध्यात्मिक कवि की आत्मा ही अच्छी तरह समझ सकती है।

एक और उदाहरण इसी कृति से हम देते हैं :

निज गुण छिटे ने पर गुण भर पड़े,
ते पर गुण पुद्गल जाण हो। भविकजन
पर गुण भरियो निज गुण हुवै निर्मलो,
ज्यूं आका घट में जाण हो॥ भविकजन
अशुद्ध निज गुण छिटियो शुद्ध निज गुण हुवै,
ते पर गुण कर दे दूर हो। भविकजन
शुद्ध निज गुण छिटियो अशुद्ध निज गुण हुवै,
तिण सूं पर गुण लागे पूर हो॥ भविकजन
ते मैला निज गुण मोह कर्म थी,
त्यां निज गुणां सूं पर चेतन हो। भविकजन
मोह रहित निज गुण हुवै निर्मला,
त्यां सूं परगुण दूर पलण हो॥ भविकजन
सात कर्म सूं निज गुण मैला हुवै,
त्यां सूं पाप न लागे तन हो। भविकजन
ते सात कर्मा हुवे निज गुण निर्मला,
त्यांरा गुण मिल छै न्यारा हो॥ भविकजन

"आठ कर्मों के उदय से अनेक निजगुण रूपी भावों का उदय होता है और उनके क्षय से क्षायक भावों की उत्पत्ति होती है।

"चार कर्मों के क्षय-उपशम से निजगुण रूपी क्षय-उपशम भावों का उदय होता है। मोह कर्म के उपशम से निजगुण रूपी उपशम भाव होता है

"ये चारों ही भाव—उदय, उपशम, क्षायक, क्षयोपशम—परिणामिक हैं; ये जीव के परिणाम हैं। चैतन्य भाव जीव का निजगुण है और ये उसी की पर्याय हैं। ये भाव जीव फिर जाते हैं पर द्रव्य जीव फिरते नहीं। उसका भी न्याय सुनो।

"तत्त्वों को शुद्ध समझने से जीव सम्यक्त्वी होता है, उल्टा श्रद्धने पर वही जीव मिथ्यात्वी हो जाता है। वही जीव ज्ञानी का अज्ञानी हो जाता है और अज्ञानी का ज्ञानी।

"नारकी और देवता का जीव मनुष्य और तिर्यंच हो जाता है और मनुष्य तिर्यंच का जीव देव हो जाता है। ऐसे ही जीव के अनेक भाव हैं। वह कुछ-का कुछ हो जाता है।

"जीव अनादि और शाश्वत द्रव्य है। उसकी पर्यायें अनन्त हैं। कर्म के संयोग से इन पर्यायों की हानि वृद्धि होती है परन्तु द्रव्य की हानि वृद्धि नहीं होती।

जीव के भाव—पर्यायें फिरती हैं पर द्रव्य नहीं फिरता। इन भावों के अनेक भेद हैं। ये भाव निश्चय ही अशाश्वत हैं। निःसंदेह इस बात पर श्रद्धा लाओ।"

"जीव द्रव्यतः शाश्वत है और भावतः अशाश्वत है। ऐसा जिन-भगवान ने भगवती सूत्र के ७ वें शतक में कहा है। भाव जीव को अशाश्वत इस कारण कहा है कि उसकी पर्याय पलटती रहती है और द्रव्य जीव को शाश्वत इसलिए कहा है कि जीव कभी अजीव नहीं होता।"

द्रव्य जीव और भाव जीव का कितना सुन्दर बोध इस ढाल में भरा हुआ है। निजगुणों के निर्मल होने से 'परगुण दूर पलाय हो' कितना सुन्दर बना है! 'ते प्रय्या हाण विरध हुवे कर्म सूं, तिण द्रव्य की नहीं हाण विरध हो' इस एक पद

देखा, जो उन्हें सच्चा गुरु समझ वन्दना करता है वह स्थिति को नहीं देखनेवाला मूर्ख और अंध पुरुष भवभव में डूबता है।"

स्वामीजी का कुगुरु पर यह दृष्टान्त कितना सुन्दर और मौलिक है! वेश से कोई साधु नहीं होता, गुण से होता है। आगम में उठा हुआ कुआ भी कुआ ही रहेगा। उस पर बैठने वाले की मृत्यु होगी। उसी तरह कुगुरु की संगत करने वाला डूब मरेगा। सद्‌गति की ओर मोड़ने वाला यह दृष्टान्त कितना उद्बोधक है, यह पाठक स्वयं ही अनुभव करते होंगे।

कुगुरु पर दूसरा दृष्टान्त भड़भूंजे का है। जो राजस्थान के ग्रामीण-जीवन से परिचित हैं, उन्हें यह दृष्टान्त बड़ा ही जचता होगा।

'कुगुरु भड़भूंजे के समान हैं और उनकी श्रद्धा भाड़ के समान होती है। कर्मों से भारी हुए जीव धान-चून के समान हैं जिनको वे कुगुरु खोटी श्रद्धा रूपी भाड़ में झोंका करते हैं।"

'बारह व्रत की चौपई' भी नीतिकाव्य का सुन्दर नमूना है। स्वामीजी ने इस रचना में श्रावक के बारह व्रतों का विवेचन इतने सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के साथ किया है कि पढ़ने वाले को आश्चर्यचकित हो जाना पड़ता है। इस रचना के दोहे भी बड़े मार्मिक और अर्थ-गंभीर हैं। सरल भाषा, गम्भीर स्पष्टीकरण और वैज्ञानिक विश्लेषण शैली के कारण यह रचना इस विषय की रचनाओं में अपूर्व स्थान प्राप्त कर लेती है।

इस रचना के कुछ दोहे पाठकों की जानकारी के लिए नीचे दिए [illegible] हैं। [illegible] धर्म के पालन के दोहे इस प्रकार हैं :

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

तैसो यह मानव तनो, करे अहंता त्याग ।
मन में समता आन ने, छोडे भार वैराग ॥
इहलोके जस सौ तपनो, परलोके सुख पाय ।
भाव सहित आराधियाँ, जनम-मरण मिट जाय ॥
मोटो करे तू मानवी, [illegible] हमारो द्वार ।
[illegible] तनो मन मोहनी, [illegible] लावे मार ॥
[illegible] तनो अब पल में, जे नर पावे मोल ।
[illegible] सेवा करे, धरे सुमि में [illegible] ॥
[illegible] लागे [illegible], [illegible] पर [illegible] ।
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

बारज परिग्रहो नवजात रो, ममता करि मह्यो छै ताण ।
तिण सूं याने परिग्रह कह्यो, तिण थी पाप लागे छै आण ॥

पाठक देखें कि इन दोहों में एक भी शब्द भरती का या निरर्थक नहीं। दोहों में भी एक सुन्दर सुमधुर तान है। "माठो निजर जावे नहीं तिणरो लेखो पार," यह पद तो रात-दिन रटने जैसा है। 'झूठ बोला मानवी, नहीं क्यारी परतीत,' 'चोरी को ते मानवो गया जमारो हार,' 'भोग जाणो विष सारखा, घर नारी दे त्याग,' 'ते परिग्रहो मूर्छा आण' 'यति मारगनो भजणो, नक मेजावे ताण'—आदि केवल सुन्दर उपदेश-पद ही नहीं हैं पर उनमें शान्त काव्य का अमी-रस भरा पड़ा है। पढ़ने से ही भावनाएं निर्मल होती हैं और मन वैराग्य की ओर मुड़ कर, संवेग रस में झूलने लगता है। भाव और भाषा दोनों पर कवि का समान अधिकार उनके कलाकार का सुन्दर परिचय देता है।

अणुव्रत और गुणव्रत का सम्बन्ध, इस रचना के दोहों में इतने सुन्दर और स्पष्ट रूप में बतलाया गया है कि उन्हें उद्धृत किये बिना लोभ संवरण नहीं होता :

पांच अणुव्रत [illegible] पाल ।
छोटा [illegible] ॥
तिण आगार ने मेटवा भणी पहलो गुण व्रत [illegible] ।
दिशि मर्यादा [illegible] ने, टाले [illegible] ॥
माहिलो अव्रत मेटवा, दूजो गुण व्रत धार ।
इत्यादिक त्यागन करे, भोगादिक परिहार ॥
ये इत्यादिक राखिया, जेहनी अव्रत आण ।
अर्थ दंड छूटे नहीं, अनर्थ दण्ड पच्चखाण ॥

"पांचों व्रतों को ग्रहण करने से स्थूल हिंसादि पापों से विरति रूप बड़ी पाल बांध दी जाती है फिर भी सूक्ष्म हिंसादि पापों से अविरति रहने से छोटी रूपी जल बेरोक-टोक आता रहता है।

इस अविरति को मिटाने के लिए पहले गुण व्रत का विधान है। इस गुण व्रत में दिशि मर्यादा कर, उसके बाहर सूक्ष्म पापों से विशेष रूप से निवृत्त हुआ जाता है।

मर्यादा कृत क्षेत्र में जो सूक्ष्म अविरति रह जाती है उसको मिटाने के लिए दूसरा गुणव्रत—उपभोग परिभोग परिमाण—धारण करना होता है। इस गुणव्रत में द्रव्यादिक का त्याग और भोगादिक का परिहार करना पड़ता है।

मर्यादित क्षेत्र में जो मर्यादित वस्तुओं के सेवन की छूट रख ली जाती है। वह भी अविरति है। इस अविरति को सीमित करने के लिए अनर्थ दण्ड त्याग अर्थात् बिना प्रयोजन पाप कर्म करने का त्याग किया जाता है और केवल प्रयोजन से पाप की छूट रह जाती है।

अणुव्रत और गुणव्रतों के पारस्परिक सम्बन्ध का इतना हृदयग्राही विवेचन अन्यत्र दुर्लभ है।

अब इस [illegible] के दोहे देते हैं

[illegible] सम्मत।

[illegible]

[illegible] प्रकार ।
[illegible] लिया ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥

अब हम [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible], प्रतिमाओं [illegible] ।
[illegible] ।
[illegible] ॥
[illegible]
[illegible] ।
[illegible]
[illegible] ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥

तरां केडे जाविर, डीज अनन्दी कार।
तिन दन हुवत हेहिदो, दे दोः दनो आवर॥
१ मत लिय कारले, उदन करे लिजेन।
माने सपंटे भवन, हुपे दन देवा तुं प्रेम॥

एक दाल में रसलीनजी ने मद्य भंग करने के दोष पर विचार किया है। इस दाल के वर्ष पर इस प्रसंग में रखने योग्य है। हम उन्हें यहां देते हैं:

छेडो मोडे कुंत मत बादूरो दो,
पलक्यो हुवे रीत।
दे कुंत मोजले मिल्ट हुवा दे,
चिहुं मत में होते फवीत रे॥ म० १॥ *
छेडोई कुंठ भने छै दिन में,
इवत पड़े छै सनन्द।
दो मेडो कुंठ भने छै दिनरो
होवे फुल सिरदेर रे॥ म० २॥
हिंदः मूड घोरी ने मैहुन परिमद्दो,
लाने लाने छै भरू देराने।
लपं स्टन डराने भने
दिनरो छै हुरो सनग्यो रे॥ म० ३॥
कारक कारः हुंद हिरः
लावे भौर करे रसदूर।
दे फूटः छै कारक डीज हसूदो
है पड़ पन कुन्दलहुं कु रे॥ म० ४॥

---

*अविरल कुंत न मंदो लिस्तरि
हुंद मन्तों कुं घने सुरारे रे।
म० दांडे मडे टे सन्द संदरो

[illegible] गया।

[illegible] सकता?

[illegible] बोला।

[illegible] दिया।

[illegible]

[illegible] अपार [illegible] कृपा [illegible]
[illegible] अन्य [illegible] ।
[illegible] दीन [illegible]
[illegible] है ॥ ४० ॥
[illegible] के [illegible]
[illegible] नहीं [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

अन्यंत [illegible] कुलंत [illegible],
[illegible] [illegible] गयो [illegible] [illegible]।
हे [illegible] मे [illegible] सुं [illegible],
[illegible] [illegible] [illegible] रहे [illegible] रे॥
[illegible] [illegible] ने [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] ते [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥
[illegible] [illegible] मे [illegible] [illegible] [illegible] लो
[illegible] सुं [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible],
[illegible] मे [illegible] मे [illegible] [illegible] ॥

उपरोक्त पदों में [illegible] ने कहा है कि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है कि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] कहते हैं

[illegible]

जो कुगुरु तणो विनय करे तो किम उतरे भव पार
क्यों सुगुरु-कुगुरु नवि ओळख्या ते गया जमारो हार
कई अज्ञानी इम कहे गुरु ने बाप एक होय
मूंडा भला तें गुरु कह्या, त्यां ने नवि छोड़ना कोय
जिण आगम मांहि इम कह्यो, गुरु करणा गुण देख
खोटा गुरु ने नवि सेवणा, त्यांरो संगत करणो निषेध
खोटो नाणो न सांतरो, एकण नीली मांय
ते भोळा रे हाथे दियो सुरो किसो किम जाय
जिणरी बुध छे निरमळी ते देखे सोना री चाल
सुगुरां ने पारखे करे, साध कहे पग माल

'जिन भगवान ने विनय को धर्म का मूल कहा है'—ऐसा सब कोई कहते पर इसके रहस्य को विरले ही समझते हैं। भगवान के वचनों का रहस्य यह है जो सद्गुरु का विनय करता है वही मुक्ति की ओर बढ़ता है।

जो असत् गुरु का विनय करता है वह किस तरह इस भव का पार पा सकता है? जो सत्-असत् गुरु को पहचान नहीं करता वह मनुष्य-जन्म को यों ही खोता है। कई अज्ञानी ऐसा कहते हैं कि बाप और गुरु एक समान होते हैं, भला और बुरा क्या जिसे एक बार मुख से गुरु कह दिया उसे नहीं छोड़ना चाहिये।

पर यह बात न्यायोचित नहीं है, क्योंकि जिन आगम में ऐसा कहा है कि गुण देखकर गुरु करना चाहिये। कुगुरु की संगत नहीं करनी चाहिये। गुरु-कुगुरु की पूरी परीक्षा करनी चाहिये।

खोटा और खरा सिक्का एक थैली में डालकर भोले के हाथ में देने से वह उन्हें कैसे परख सकता है? वैसे ही एक वेष में रहने वाले साधु-असाधु की परीक्षा भोलों से नहीं हो सकती।

[illegible]—आचार-विचार से गिरे हुए—शूद्र होते हैं, उन्हें [illegible] छिटका देना—दूर कर देना चाहिए।"

'थोड़े [illegible] ने [illegible] —में कितनी गहरी [illegible] छिपी हुई है। '[illegible]'—में कितना [illegible] पर मधुर व्यंग है। '[illegible]' का [illegible], कवि की [illegible] गहरे अनुभव और सदाचार के प्रति उनके हृदय में रही हुई महान् प्रतिष्ठा का मनोहर [illegible] उपस्थित करता है। [illegible] में [illegible] की बात को [illegible] के [illegible] में [illegible] के [illegible] जीके प्रबल बुद्धिशाली होने का [illegible] उदाहरण है। [illegible] मौलिक होने के साथ-साथ [illegible] और [illegible] है। इसी विषय की एक [illegible] के कुछ पद हम यहाँ और देते हैं, [illegible] देखें—इनमें कितनी [illegible], कितना [illegible], [illegible] और अनुभव की कितनी गहरी [illegible] है! [illegible] कहते हैं:

[illegible] है
[illegible] है
[illegible] है
[illegible] है
[illegible] है
[illegible] है
[illegible] है
[illegible] है
[illegible] है
[illegible] है
[illegible] है
[illegible] है

कथा रे मांहीं कांइ गाइज्यां सनी रे
मुध मरधा ने चलगत मांड प्रगट रे
लोक भाषा में पिण हुवा दिख बटे रे
ओ साधो पिण जुगता न गयो काय रे
कूड़ा भरिया जल में सम्यो गम रे
सगला जे चन्द्रमानो प्रतिबंब रे
मूरख जाणे गिटलेड चन्द्रमा रे
[illegible]
प्रतिबिम्ब में ओ कांइ [illegible]
ते तो कहीज [illegible]
ज्यो गुण बिन सरध साधु [illegible]
ते भूला मिथ्यात्वी [illegible]
[illegible] अनन्ता [illegible]
अनन्ता जाणो [illegible]
गुरु ने घेलो कुणी ठवे बोलणी रे
[illegible] मारया बिन न मिटी आन रे
गधा में [illegible] चन्दन [illegible] रे
तै मार लगी [illegible] [illegible] रे
ज्यूं किरिया में हुंस [illegible] मुनर [illegible] रे
[illegible] बिन [illegible] मुद्र [illegible] रे
बड़े मन [illegible] [illegible] [illegible] रे
[illegible] [illegible] भाव [illegible] देख रे
ज्यों [illegible] [illegible] [illegible] रे
ज्यूं बीज बिन [illegible] रह गयो बैन रे

[illegible] — [illegible] — [illegible] — [illegible] चाहिए। [illegible]

“[illegible] चाहिए। [illegible] है। [illegible]

“[illegible] है [illegible] है। [illegible] नहीं। [illegible] होते हैं।

“[illegible] चाहिए। [illegible] नहीं — [illegible] चाहिए। [illegible]

“[illegible] हैं और [illegible] है। [illegible] है। [illegible] है [illegible] है।

“[illegible] — [illegible] — [illegible]

“[illegible] है — [illegible] — [illegible] है।

"कई सूत्र पढ़ते और पढ़ाने हैं पर उनकी दृष्टि कीर्ति, प्रशंसा, मान और बड़ाई की होती है। जैसे बिना बीज हल चलाने से खेत खाली ही रहता है उसी तरह सूने चित्त से सूत्र पढ़ने से जीव परमार्थ नहीं पाता'।"

'शुद्ध सरधा से करते सदा समाध रे,' 'घणां रे भरोसे कोई रहिज्यो मती रे,' 'जो गुण बिन सरधे साधु भेखने रे ते लूंता मिथ्यात्वी पूर अजाण रे,' 'साची सरधा बिण न मिटी भ्रांत रे,' 'सूने चित परमार्थ पायो नहीं रे ज्यूं बीज बिण खाली हुए गयो खेत रे'—कितने गूढ़ अनुभव वाक्य हैं! जैसे उनमें से आध्यात्म रसका झरना कल-कल करता हो। मुखड़े, चन्द्रमा, गरुड़े, और बीज के दृष्टान्त वस्तु तत्त्व को कितनी गम्भीरता के साथ स्पष्ट करते हैं! काव्य का संगीत तो घड़ी तक कानोंमें गूंजायमान रहकर अपना चिर प्रभाव छोड़ जाता है। स्वामीजी से सुबोध लोक कवि कोई पुण्यी के बाद होते हैं।

एक जगह क्रोध और अभिमान की निन्दा करते हुए स्वामीजी ने कहा है :

क्रोध घणो बोले अळखामणो रे
उपसम्यो कजियो करिवा त्यार रे
मिथ्या ही मारग ठोक वजर पड्या रे
ते गिण पुल पामे इण संसार रे
कने भेष छै इलका बोले एहवा रे
कहे म्हा गुण कुण छै म्हान अंबार रे
ई औगुणिक नव तत्त्वो निरणो कुण रे
कने अगुण्यो तरणी गुं अणगार रे
एहवा आंकणें साधु भेष में रे
हो नोकारदिक अपार रीप्ते रह रे
अनेरा कुमत सता थप्पवी भणे रे
जोरे अपार मान वैराम रे

जब तूं [illegible] रे
चरित [illegible] रे
[illegible] रे
[illegible] रे
[illegible] रे
[illegible] रे
[illegible] रे
मरे छोड़े [illegible] पर रे

अर्थात्: [illegible] होते हैं, [illegible] बोलते रहते हैं और [illegible] के लिए [illegible] रहते हैं—[illegible] कर [illegible] हैं—[illegible] हैं और [illegible]—[illegible] देते हैं।

[illegible] करते हैं कि [illegible] कौन है? [illegible] करते हैं [illegible] हैं।

[illegible] हैं—[illegible] हैं [illegible] हैं।

[illegible] करते हैं [illegible] की तरह [illegible] हैं और [illegible] करते हैं।

[illegible] है, [illegible] होता है?

[illegible] और [illegible] करने [illegible] है! [illegible] पर रे—[illegible] है [illegible] में [illegible]

तरह के अनेक अमोलक जीवन-सूत्र दिए हैं जो साधुओं के ही नहीं परन्तु श्रावकों के जीवन को भी अत्यन्त महान बना सकते हैं।

स्वामीजी ने एक स्थान पर कुनारी-स्वभाव का चित्रण किया है। स्वामीजी कहते हैं कि 'सती' 'कुसती' में एक 'कु' का अन्तर होता है परन्तु यह अन्तर इतना बड़ा होता है कि 'सती' 'शीलगुण' की खान होती है और कुसती अवगुण [illegible]। सती सीता के सारखी होती है जिसका वर्णन जिनशास्त्र में आता है और कुसती दुर्गंधा सारखी जो कुल को कलंकित करती है। इसके [illegible] कुसती का स्वभाव-चि[illegible] करते हुए लिखते हैं

> नारी दूर कपट नी कोथली [illegible] ।
> कलह करता ने [illegible], [illegible] ।
> [illegible] ।
> घर में बैठी [illegible] ।
> नैना [illegible], [illegible] ।
> [illegible] ।
> कोयल [illegible] ।
> [illegible] ।
> [illegible] ।
> [illegible] ।
> [illegible] ।
> [illegible] ।
> नारी ने [illegible] ।
> [illegible] ।
> नारी [illegible] ।
> [illegible] ।

* [illegible]

लोभ कटै मद [illegible] लागा हणे प्राण । भ०
न्हांखे नरक निगोद में, नारो नव मद जाण । भ० प०
इण संसार असार में, तिणमें मोटी गाल । भ०
मानस छोडै मारीजे, गावै ढोकर माल । भ० प०

स्वामीजी जिस चीज का वर्णन करने बैठते, उसका चरम से चरम कोटि का सुन्दर वर्णन कर [illegible] कर सकते। उनकी बुद्धि सावन-भादों के बादलों की तरह बरसती रहती और नए [illegible], नई उपमाएं, नए दृष्टान्त, नई सूझ, नये स्वर और नई ताल की बूंदों से [illegible] हृदय हरे [illegible] रहते। वे अनुपम उपदेश, अनुपम [illegible] और अनुभव ज्ञान की त्रिवेणी बहा देते। उनकी लेखनी कभी थकती नहीं थी। उनकी वाणी में कभी शिथिलता नहीं आती थी।

कुलटा के [illegible] स्वभाव का जो [illegible] स्वामीजी ने प्रस्तुत किया है, वह [illegible] [illegible] सूक्ष्म-से-सूक्ष्म भावनाओं [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] स्वामीजी के [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] अवस्था की [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] के [illegible] कुलटा नारी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नहीं [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है, कुलटा नारी [illegible] को कलुषित करती है [illegible] [illegible] [illegible] कुलटा [illegible] [illegible] नहीं है सुन्दर नहीं है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है, कुलटा नारी दुर्गन्धित पुष्प के सम [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] मधुर-उपमाएं में मधुर शब्दों को [illegible] की [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] की [illegible] [illegible] को [illegible] [illegible] का सुन्दर [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] इन शब्दों से सुगन्धित हो—[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

है—यह कवि ने थोड़े, परन्तु सशक्त शब्दों में व्यक्त किया है। "घन बरो पीते मोर, [illegible] कितना सुन्दर और अभिव्यक्तिपूर्ण है। मोर में एक ओर मीठे बोल होते हैं, दूसरी ओर सांप मारने की निर्मम करने की क्रूरता। [illegible] कहते हैं कि कुब्जा नारी में भी मोर का यह स्वभाव पाया है। [illegible] कहते हैं कि नारी दर्पण की तरह है जो पुरुष के गुण [illegible] के कामों को रात दिन बखान करती रहती है। [illegible] की रचना भी एक अनोखी सूझ है। "[illegible] छूटे [illegible], [illegible] हृदय की [illegible] करते हैं। कुब्जा नारी की [illegible] की उपमा, [illegible] की उपमा, [illegible] की उपमा —[illegible] की ऊँची उड़ान और अनोखी सूझ का परिचायक है। [illegible] की सूक्ति इसी तरह [illegible] ओज-प्रवाह, सरल, सुबोध और [illegible] है।

[illegible] की कविता क्या है—एक अनुभवी [illegible] की [illegible] है जो हृदय-[illegible] पर एक चिर मधुर संगीत छोड़ जाती है। [illegible] ने [illegible] की [illegible] पर इसी तरह के अनेक चिर [illegible] छोड़ जाते हैं।

[illegible] केवल [illegible] कवि ही नहीं थे परन्तु कुशल चरित्र-चित्रकार भी थे। इनके [illegible] चरित्र-चित्रण के [illegible] के [illegible] है। [illegible] के सूक्ष्म विश्लेषण करने में [illegible] हुए थे, जिसकी कि [illegible] के [illegible] पर [illegible] गुणों [illegible] के [illegible] करने में [illegible]। इनके [illegible] कौशल और चरित्र-चित्रण की [illegible] के [illegible] पर [illegible]। [illegible] के [illegible] पर [illegible] है। [illegible] के [illegible] पर [illegible] हो जाती है। [illegible], [illegible] में [illegible] है, [illegible] हृदय [illegible], [illegible] — [illegible] में [illegible]—[illegible] के [illegible] को [illegible]

व्याकुल हो गई। 'काम तणे वश कामणी रे लाल, ना गिणे काज अकाज'—काम के वश हुई कामिनी किस तरह कार्य-अकार्य की ओर दृष्टि नहीं रखती, इसका सुन्दर चित्रण कवि ने किया है। विरह-व्याकुल कपिला अपनी दासी को सेठ सुदर्शन के पास भेजती है और वह छल-प्रपंच कर सेठ को महल में बुला लाती है। इस समय कुलटा कपिला की काली करतूत का चित्रण बड़ा ही रोमांचकारी है। सुदर्शन के मन की स्थिति भी बड़ी ही विचित्र होती है। सुदर्शन की मेरु के समान सुदृढ़ मनोदशा का चित्रण कवि ने बड़े ही सुन्दर रूप में किया है। इस अनहोनी घटना को कठिन देख कर 'गात पसेवो चल्यो, कम्पण लागी देह'—सुदर्शन के शरीर में पसीना बह चला, शरीर कांपने लगा और 'विलखो थयो अपार'—बड़ा उदास हो गया। वह सोचने लगा 'मैं चरित्र न जाण्यो नार रो, किम रहसूं आय फन्दे छु पड़'—और फिर उसने एक प्रतिज्ञा धारण की 'जिण शील न भांजू माहरो, आ करे अनेक उपाय, जो वश छे म्हारी आत्मा तो न चले कोई बलाय।' कपिला निराश हो गई। वह 'मूर्ख सूं रस [illegible]'—[illegible] और [illegible] काम कर्यो ऐसू नहीं, कोई न सरियो काज'—[illegible]

उपरोक्त घटना के बाद कथा आती है [illegible] अभया सुदर्शन पर मोहित हो जाती है। कपिला [illegible] सुदर्शन के प्रेम में न फंसने की बात कहती है। [illegible] न दूंगी तिवारा'—कहकर [illegible] है। कपिला कहती है—[illegible] है। [illegible] है [illegible] है और [illegible] है [illegible] पर चढ़े हुए [illegible] का चित्रण कवि ने [illegible] सुन्दर किया है कि [illegible] बन [illegible] है।

[illegible]

अपनी मनोव्यथा प्रकट कर, सेठ सुदर्शन से मिलने की युक्ति करने का अनुरोध करती है। हठ पर चढ़ी हुई विषयान्ध नारी की मनोस्थिति का सूक्ष्म निरीक्षण करना हो तो अभया की इन बातों को सुनिये। विषयान्ध प्रेमिका को परपुरुष किस रूप में दिखाई देता है—इसका सुन्दर वर्णन यहां आया है। कवि की गूढ़ तूलिका का कौशल इस वर्णन में बड़े ही सुन्दर रूप में प्रकट हुआ है।

अभया रानी कहै धाय ने, म्हांरी बात सुणो चित्त ल्याय हे माय।
थे बालक स्यूं मोटो करी, तोस्यूं बात न राखूं छिपाय हे माय ॥अभया०॥*
मुझ एक मनोरथ ऊपनो, बस रह्यो छै मन मांय हे माय।
ते बात सहनु छै घणी, तिण कह्यां बिना सरै नांय हे माय॥
बसन्त ऋतु खेलण गई, राय सहित वन मंझार हे माय।
तिण वने चम्पानगरी तणा, आया घणा नर नार हे माय॥
च्यार पुत्र सहित परिवार स्यूं, तिहां आयो सुदर्शन सेठ हे माय।
और सेठ तिहा तिण आविया, ते सुदर्शन रे हेठ हे माय॥
तिणरा अणियाला लोचन भला, जाणक सोभै भाल हे माय।
मुख पूनमचन्द सारखो, तेहनो रूप रसाल हे माय॥
तिणरो काया कंचन सारखी, सूर्य जिसो प्रकाश हे माय।
शीतल चन्दन सारखो हेम सरीखो, तइलो प्रकाश हे माय॥
तिण ने दिठां मोहन हुवै, तेहनो तेज अपार हे माय।
तिण आगे शोभा स्यूं अनङ्ग, तुरत रह्यो पुन रात हे माय॥
म्हारो मन लाग्यो छै तेह स्यूं, जाणै रहूं सेठ रे पास हे माय।
एह मनोरथ ऊपनो, रात दिवस रहो हूं विमास हे माय॥
तिण स्यूं मुझ तृषा म्हारी गई, निश दिन रहूं छू उदास हे माय।
म्हारो मन कदेई रहसी नहीं, तिणस्यूं कहूं छू तुमने पास हे माय॥

* अभया रानी कहै धाय ने।

हूं मोही सुदर्शण सेठ स्यूं, तिण स्यूं लागो म्हारो राग हे माय।
सेठ स्यूं मिलूं नहीं ज्यां लगे, दिन २ गले छै म्हारो आंग हे माय॥
मैं कपिला ने बद २ कह्यो, वश करूं सुदर्शण सेठ हे माय।
सुख भोगवूं नहीं सेठ स्यूं, ए वचन आय म्हारो हेठ हे माय॥
ए वचन तो ज्यांही रह्यो, म्हारी बंछा पूरण हाम हे माय।
ए मनोरथ पूरां बिना, म्हारे हाथ न लागे काम हे माय॥
ए बात कही तुम्ह आगले, अन्तर न राख्यो कोय हे माय।
हिवे सेठ सुदर्शण भणी, वेग मिलावो मोय हे माय॥
सौ वातां एक बात छै, ते कही कठा लग जाय हे माय।
लाड पूरो माय मोहरी, तो जाणूं साची धाय हे माय॥

उपरोक्त अनुरोध के बाद पण्डिता धाय और रानी अभया के बीच का वार्तालाप होता है, वह बड़ा ही रसप्रद और स्वाभाविक है। पण्डिता की हित-शिक्षा और अभया का जिद दोनों चरम कोटि को पहुँच जाते हैं। पाठक इसका भी रसास्वादन करें।

पण्डिता धाय—

राणी ने हे समझावे पण्डिता धाय, "तुम बाई चित लगाय
मुझ सिखावण साहरी ओ
"म,' बरजा हे बाई मूढ़ गींवार, थे राय तणी पटनार
ए बात थाने जुगतो नहीं ओ
कुणा कुल में हे बाई थे उपन्या आण, थां ने चतुर सुजाण
ए औगुण किम काढ़िये ओ
इण बातां हे बाई लागे कुल तणे, बले लाजे कुल मान
बले पीहर लाजे तुम तणो ओ

एहवे करतो हे बाई लाजै मात मोसाल, तिम कुल सासरो निहाल
त्यांने लागै घणी मोटी मेहणो जी

एक पीहर हे दूजो सासरो जाण, बेहूं कुल चन्द समान
दोनूं पख धारै निरमला जी

कुण करता हे बाई लागै कुल ने कलङ्क, लागे जिहां लग तङ्क
ले मुख २ ने मारो नीचो करै जी

एहवी करता हे बाई फुमै देश परदेश, कुगमी राय नरेश
निंदा करसी कुल तणी जी

राज मांहे हे बाई धरै मोटी मण्ड, होसी जगत में भण्ड
शील बिना एक पलक में जी

शील बिना हे बाई फिट २ करै सहु लोय, अपजस अकीरत होय
नर-नारी मुख मचकोड़सी जी

पिता सूंपी हे बाई घणा पुरसां री साख, जिण ऊपर निसचो राख
पुरख तणी सेवा करो जी

पर पुरख हे बाई जाणो भाई समान, ए सीख हमारी मान
ज्यूं मान बधै थांरो जगत् में जी

घणी शोभै हे बाई चन्दमा सूं रात, तिम नारी नी जात
शील थकी शोभै घणी जी

जल बिन नदी हे नहीं शोभै सिणगार, तिम नारी सिणगार
शील बिना शोभै नहीं जी

शील बिना हे बाई लागै कुल ने कलङ्क, ज्यूं राणेसर लङ्क
कुल ने कलङ्क चढ़ावियो जी

शील बिना हे बाई डूब्यो अनेक, मैणरेहा ने विशेष
मणरथ राजा मर नरके गयो जी

शील घट्यो है सीता हुई कुलकलंकी नार, ते नहीं सगम सुधार
कुल निरमल कियो आपणो जी
शील घट्यो है कन्तो द्रौपदी रो चीर, तिण पाम्यो निरमल शील
जनम सुधारयो आपरो जी
शील बिना है नारी पगा भर नार, गया जमारो हार
पड़िया छै नरक निगोद में जी
शील घट्यो है नारी पगा भर नार, गया जमारो हार
[illegible] शीतल है लोक में जी
शील बिना है कोई अमोलक जी जाय, [illegible]
शील बिना कुल कलंक में जी
हुवो हीन है नारी पाणी मन बिन स्वाम, [illegible]
[illegible] पर पुरुष सूं जी
म्हारी मन [illegible], [illegible]
[illegible]

रानी [illegible]—

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

पांच पांडव हो धायजी बचना रे काज, गयो ज्यांरो राज
नगर बैराट सेवा करी जो
बचन चूक्या हो त्यांरो नहीं रहो धर्म, तिण रो ओहिज मर्म
तिण रयुं रापूं छूं म्हांरे बचन ने जो"

पण्डिता धाय :

एहवा बचन हो राणी रा सुण धाय, फेर बोले मले बाय
"इसड़ो पेठाई बाई मत करो जो
एहवा बचन हो सुण.सी महाराज, तो थासी बड़ो रे अकाज
तुमने मोत कुमोते मारसी जी
और सगलो हे बाई तुम परताप, वे पिण होसी भाप
इण बात में शङ्का को नहीं जी
तिण कारण हे बाई थाने कहूं हूं साय, निज मन रयो समझाय
सीधी टेक पाछी परहरो जी"

रानी अभया :

"सेठजी ने हो धाय तुम ल्यावो छिपाय, ज्युं नहीं जाणे राय
पछे छानो तिण पेंहचावज्यो जो
छानो आणी हो छानो दोज्यो पहुंचाय, ते किम जाणसी राय
थे चिन्ता करो किम कारणे जो"

पण्डिता धाय :

धाय भाखे "हे बाई छानी रहसी किम बात, राय करसी तुम घात
ए बात छिपाई बाई ना छिपे जो
पर पुरष हे बाई जाणो म्हसण समान, धारे सुध बेसान
जिहां जाय तिहां परगट हुवे जो

शील पाळी है सीता सुंदरी कुलवन्ती नार, ते नहीं अबला सुधार
कुल निरमल कियो आपणो जी
शील पाळ्यो है कन्यो द्रौपदी रो चीर, तिण पाळ्यो निरमल शील
अगन सुधारी आपरी जी
शील बिना है कांई नगर नर नार, नया कमारी हार
पडिया छे मांहे निगोद में जी
शील पाळो है कांई नगर नर नार, नया अमारी सुधार
स्वर्गे अमर दीसत छे मोक्ष में जी
शील बिना है कांई अणोमणी जी [illegible] नहीं छे [illegible]
शील बिना एक पलक [illegible] में जी
इणे शील है कांई पाळो मन चित ल्याय, [illegible]
[illegible] जी
म्हारी मन [illegible] है कांई [illegible] [illegible]
[illegible] जी

रानी अभया —

"[illegible] कांई हो [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible]

[illegible] [illegible] है [illegible]
[illegible]

[illegible] [illegible] हो [illegible]
[illegible]

[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible]

जिहां जाय तिहां परगट हुवे जी।" पर पुरुष के साथ लहसुन की तुलना स्वामीजी के संस्कारी दृष्टान्तिक होने का सुन्दर परिचय कराती है।

मनोदशा के ऐसे ही अद्भुत और बारीक चित्र इस काव्य में शुरू से आखिर तक बिखरे हुए हैं। अभया रानी सुदर्शन को वश में न कर सकी, तब क्रोधित हो, उस पर झूठा इल्जाम लगा कर महाराज से उसे दण्डित कराने की चेष्टा करने लगी। महाराज ने सुदर्शन को शूली पर चढ़ाने का हुक्म दिया। यह बात नगर में हाथों-हाथ फैल गई। सुदर्शन जैसे सच्चरित्र व्यक्ति पर व्यभिचार का आरोप किसी को सत्य नहीं लगता था। गाँव के लोगों ने मिलकर राजा से पुकार करने का निश्चय किया। 'इस तरह गाढी मन में धार'—उन्होंने राजा के पास जाकर जो अर्ज की, उसकी अन्तःस्पर्शता देख कर पाठक प्रफुल्लित हुये बिना नहीं रहेंगे।

राजा प्रजा की नहीं सुनता। वधिक सुदर्शन को शूली—स्थान की ओर ले जाने के लिये नगर के मध्य से होकर निकलते हैं। प्रजा में हाहाकार मच जाता है। अपने घर के सामने आने पर सुदर्शन को अपनी स्त्री मनोरमा से मिलने दिया जाता है। दम्पती स्त्री-पुरुष की परस्पर विदाई अत्यन्त मनोहर और धर्म-रस पूर्ण होती है। मनोरमा अभिग्रह लेती है। अभया अपना षड्यन्त्र सफल होते देख, हर्षित होती है। इन सबका बड़ा ही सुन्दर और हृदयग्राही वर्णन कवि ने अपनी इस कृति में किया है। सेठ सुदर्शन को शूली के पास खड़ा कर दिया जाता है। उस समय सुदर्शन की दृढ़ता को ध्यान में रखने से दुःख में पड़े हुए कायर से कायर मनुष्य के हृदय में भी एक निधारणा आपूर्ण होकर सच्चा पुरुषार्थ जाग उठता है। पाठकों को यह मनो-मुग्धकारी चित्र इस मूल पुस्तक में अवलोकन करने का आग्रह करते हैं।